अध्यात्म-अध्ययन-माला—५

व्यावहारिक वेदान्त

स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा लखनऊ



अध्यात्म-अध्ययन-माला—५

व्यावहारिक वेदान्त

[स्वामी रामतीर्थ के भाषणों का संकलन]

संकलनकर्त्ता

श्री प्रबोधकुमार मजुमदार

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा लखनऊ

प्रथम संस्करण

मूल्य २.०० रु०

मुद्रक
श्री चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु
समाज-सेवा प्रेस
सआदतगंज, लखनऊ

प्रकाशकीय

आज भौतिक उन्नति के चरमोत्कर्ष से प्रलुब्ध, किन्तु सच्चे सुख और शान्ति की क्षुधा से पीड़ित, समस्त विश्व की आँखें, भारतीय अध्यात्म एवं वेदान्तदर्शन के व्यावहारिक स्वरूप की ओर आशा के साथ निहार रही हैं।

प्रस्तुत 'अध्यात्म अध्ययन माला' के अंतर्गत प्रकाशित साहित्य का उद्देश्य, मनुष्य के लिए नित्यप्रति के जीवन में वेदान्त के सूत्रों को ढालने के संबंध में मनीषियों द्वारा प्रदत्त अमृत-वचनों को संगृहीत करना और विश्व के समक्ष प्रस्तुत नयी समस्याओं का समाधान प्रदान करने के लिए, मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार करना है।

यत्किञ्चित् सफलता यदि हमें इस प्रयोजन में प्राप्त हुई तो निस्संदेह वह हमें इस पथ पर आगे बढ़ने को उत्साहित करती रहेगी।

प्रकाशक



विषय-सूची

—:o:—

व्यावहारिक वेदान्त

आत्मोपलब्धि का मार्ग

[वेदांत के सम्बन्ध में प्रचारित यह भ्रांति कि वेदांत कोरी कल्पना की उड़ान मात्र है और विरक्त संन्यासियों को छोड़कर संसारी मनुष्यों के लिए व्यावहारिकता से एकदम दूर है, यह नितांत निर्मूल है। वेदांत एकमात्र वह व्यावहारिक मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य 'अपनी सारी पीड़ाओं से मुक्त हो जाता है। ऐसे वेदांतानुरूप मार्ग का गृहस्थ किस प्रकार साधन करें और उस साधना-काल में आनेवाले कुविचारों और अवरोधों को भी कैसे अपने सानुकूल बनावें, इसका ही निरूपण इस 'व्यावहारिक वेदांत' नामक पुस्तक के आरंभ के तीन अध्यायों में किया गया है। यह सब मानव-शक्ति की पहुँच की सीमा के अन्तर्गत और सर्वथा व्यावहारिक है।—प्रकाशक]

[यह भाषण एक पुस्तिका के रूप में युक्तराष्ट्र अमरीका से प्रकाशित हुआ था]

वेदान्त के अनुसार मानसिक एकाग्रता की साधना में मुख्य बात यह है कि हम ऐसा अनुभव करने लग जायँ कि हमारा वास्तविक आत्म-स्वरूप सूर्यों का सूर्य और प्रकाशों का प्रकाश है। देह से परे; मन से परे; ऐसी अवस्था में आप अपने मन को लाइए कि सकल मोहविभ्रम से मुक्त होकर आप प्रकाशों के प्रकाश एवं सूर्यों में सूर्य के तद्रूप हो जायँ। उस अवस्था में सम्पूर्ण संसार रहस्य-रहित होकर आपके सम्मुख एक विशाल दृश्य-सा उन्मोचित हो जायगा,

खुल जायगा या बादलों की तरह छट जायगा। फिर तो प्रत्येक वस्तु आपके वशीभूत हो जायगी। आपके संकेत पर सर्वथा प्रस्तुत रहेगी।

यदि असुविधा न हो तो प्रातःकाल उठिए और सूर्य की उस छवि का दर्शन कीजिए जब वह क्षितिज के नीचे हो। सूर्य के प्रभा-मंडल की ओर देखिए और वह सुन्दर, उज्वल तथा अति-रमणीय दृश्य मन को सजीव करेगा और कुछ दूर तक ऊपर उठायेगा। जब मन प्रमुदित हो जाता है या किसी ऊँचाई तक उठ जाता है तब उसे यथेच्छ ऊँचाई पर उठा ले जाना, मानों मनोहर पर्वतों के सर्वोच्च शिखरों पर उसे चढ़ा ले जाना सरल हो जाता है।

भारतवर्ष में, खेल के मैदान में, हम गुल्ली-डंडा नामक एक खेल खेलते हैं। गुल्ली बीच में मोटी और दोनो सिरों पर खूब नुकीली होती है। इसके दोनो सिरे जमीन से उठे रहते हैं। एक सिरे को हम डंडे से चोट करते हैं और गुल्ली तुरन्त हवा में उछलती है, तब उसी डंडे से हम उस पर बड़े जोर से दूसरी चोट मारते हैं और गुल्ली हवा को चीरती हुई बड़ी दूर जाकर गिरती है। इस खेल में दो काम हैं। पहला काम है उसे ऊपर उछालना और फिर उसे हवा में दूर फेंकना। यदि मन को ईश्वरीय-मिलन में युक्त करना है तो सबसे पहले उसे कुछ ऊपर उठाना होगा और उसके उपरान्त उसे आध्यात्मिक-वातावरण में बहुत दूर तक फेंकना होगा।

प्रफुल्ल वातावरण, मनोहर दृश्य और सुरम्य भूभाग कभी-कभी मन को प्रथम उत्थान देने में, प्रारम्भिक दशाओं में उसे ऊपर उठाने में, बहुत सहायक होते हैं। उसके उपरान्त मन को दौड़ाना, उस समय तक दौड़ाना जबतक कि वह शरीर-चेतना को भूलकर ईश्वर न हो जाय, केवल ईश्वर न हो जाय, ऐसी अवस्था तक उसे उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते रहना हमारे लिए बहुत सरल हो जाता है।

मन को पहली उठान देने में और प्रारम्भिक उत्थान प्रदान करने में अनुकूल समय और स्थान से प्राप्त होनेवाली प्रेरणा का उपयोग किया जा सकता है। ऊषाकाल, पक्षियों के गीत, सुरभित पवन और पूर्व दिगन्त में दिखायी देनेवाले अति मनमोहक और सुन्दर रंग मन को मौलिक उत्थान प्रदान करते हैं।

मन को किस प्रकार से स्वर्गीय क्षेत्रों में ले जाया जाय, आत्मा को ईश्वर के सिंहासन की ऊँचाई तक कैसे उठाया जाय? उदयोन्मुख तथा अस्तगामी सूर्य का उदार आलोक जब अर्धोन्मीलित नेत्रों की मानो पारदर्शी पलकों पर गिरता है, तब हम ओं मंत्र का उच्चारण करना शुरू करते हैं, भावना की भाषा में उसे गाते हैं।

विभिन्न व्यक्तियों के लिए ओं अक्षर के विभिन्न अर्थ होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, अपनी आध्यात्मिक उत्कर्ष की अवस्था विशेष में, ओं का वही अर्थ करता है जो उसके अत्यन्त अनुकूल होता है। कुछ लोग इस अक्षर ओं को सूर्यों के सूर्य-सा मानते हैं और सूर्योदय होते ही सूर्यमंडल की ओर वे उसी प्रकार निहारते हैं जिस प्रकार नारियाँ अपने दर्पणों की ओर देखती हैं। भारत में नारियाँ अपने अँगूठों पर दर्पण पहनती हैं। उनके पास गोलाकार ढाँचे में दर्पण होते हैं। वास्तव में, नारी के लिए दर्पण से प्रियतर वस्तु कोई दूसरी नहीं है। जब वह उसमें देखती है तो अपना मुखड़ा ही देखती है, मानों वह उससे बाहर है, लेकिन वह जानती है और बोध करती है कि उसका मुखड़ा उसके साथ है। वह कोई वस्तु बाहर देखती है किन्तु उसे पूर्ण विश्वास है कि वह वस्तु वह स्वयं है। इसी प्रकार एक वेदान्ती सूर्य की ओर देखता है मानों वह उससे बाहर है किन्तु उसे पूर्ण-विश्वास है और वह बोध करता है कि वास्तव सूर्य तो उसका अपना आत्मस्वरूप है; वह बाहर का भौतिक सूर्य केवल उसका बिम्ब, उसकी प्रतिच्छाया या छाया-मात्र है।

वेदान्ती सूर्य को अपना वैसा ही आत्मीय समझता है जैसा सम्बन्ध चन्द्रमा का सूर्य से है। यों लगता है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान है, किन्तु वास्तव में, वैज्ञानिक दृष्टि से, वह अपनी सम्पूर्ण प्रभा के लिए सूर्य का ऋणी है। ऐसे ही वेदान्ती अनुभव करता और उपलब्धि करता है कि सूर्य, जो अपना तेज इस प्रकार प्रकट कर रहा है, मानों वह तेज उसी का है, वास्तव में अपनी सारी चमक-दमक मेरे सच्चे आत्मस्वरूप से ऋण लेता है और अपने सारे प्रताप और महिमा के लिए मेरा ऋणी है।

पृथ्वी घूमती है लेकिन हम यह समझते हैं कि सूर्य चक्कर लगा रहा है। जब हम ज्योतिर्विद्या पढ़ते हैं तो हमारा ज्ञान बढ़ जाता है और आगे हम धोखा नहीं खाते और हमें निश्चय हो जाता है कि सूर्य चक्कर नहीं लगाता है बल्कि पृथ्वी की गति सूर्य पर आरोपित की जाती है। इसी प्रकार वेदान्ती जब उदित सूर्यमंडल को देखता है तो वह बोध करता और उपलब्धि करता है कि जो कुछ महिमा, गरिमा और शक्ति उस तेजस्वी सूर्य की प्रतीत होती है, वह भूल से सूर्य की मानी जाती है। किन्तु वह वस्तव में मेरी है, मेरी है, मेरी है।

भौतिक जगत् में सूर्य प्रकाश अथवा ज्ञान का प्रतीक है। सूर्य शक्ति का प्रतीक है। यह प्रत्येक ग्रह से चक्कर लगवा रहा है। यह अस्तित्व तथा जीवन का प्रतीक है। प्रत्येक प्राण या तो सूर्य से उत्पन्न हुआ है या उसका ऋणी है। सूर्य सौन्दर्य का प्रतीक है और इतना उज्वल है कि पृथ्वी तथा दूसरों को आकर्षित करता है। सूर्य ज्ञान, प्रकाश, प्राण, शक्ति, अस्तित्व, आकर्षण का प्रतिनिधित्व करता है। यह सभ गुण अपने ही हैं, वेदान्ती ऐसी उपलब्धि करता है। वेदान्ती बोध करता है कि ये सब गुण मेरे ही हैं, बल्कि ये गुण स्वयं मैं ही हूँ। ये गुण और ये सब शक्ति, प्रकाश, प्राण आदि उसी प्रकार मुझसे बाहर दिखाई पड़ते हैं जिस प्रकार

एक सुन्दरी का मुखड़ा अपने से बाहर दर्पण में दिखाई पड़ता है। किन्तु वास्तव में सचमुच प्रकाश, जीवन, प्राण, ज्ञान, शक्ति, आकर्षण और सब कुछ मैं हूँ।

इस कल्पना को उपलब्ध करने और अपने सच्चे आत्मस्वरूप में लीन होने के लिए, नवागत अभ्यासी को 'ओं' अक्षर से बड़ी सहायता मिलती है। ओं अक्षर का उच्चारण या जप करते समय वेदान्ती उसका अर्थ यों लेता है: मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ, मैं सूर्य हूँ। मैं ही प्रकृत सूर्य हूँ। बाह्य सूर्य मेरा प्रतीक मात्र है। मैं ही वह सूर्य हूँ जिसके सम्मुख सारे ग्रह और नक्षत्र चक्कर काटते हैं। मेरे लिए सभी स्वर्गीय और मानवीय शरीर गतिशील हैं और वे मेरे ही लिए सब कुछ करते हैं। मैं अचल और नित्य हूँ, कल आज और सदा एकसाँ हूँ। मेरे सामने यह सारा भूमंडल, समग्र विश्व अपने गुप्त रहस्य प्रकट करता है। मुझे अपने सब भाग दिखलाने को, अपना सब कुछ दिखलाने को वह चक्कर काटा करता है। अपनी सभी दिशाएँ मेरे सम्मुख उन्मोचित करने के लिए पृथ्वी अपने धुरे पर प्रदक्षिणा करती है, विश्व मेरे लिए हर प्रकार का कार्य करता है। सूर्य मेरे लिए प्रभादीप्त है। चन्द्रमा मेरे लिए मेरे सम्मुख प्रकाश डालता है। मेरे ही आदेश से, मेरी उपस्थिति के कारण, इस संसार में सब व्यापार होते हैं। जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति ही वृक्षों की वृद्धि का कारण है, पशुओं की पेशियों की गति और मनुष्यों की मनन-शक्ति का कारण है, उसी प्रकार मेरी उपस्थिति सब को जाग्रत करती है। मेरी, सच्ची आत्मा की, प्रकृत ईश्वर की उपस्थिति ही इस संसार में सब कुछ होने का कारण होती है। ये सभी शरीर—स्वर्गीय या मानवीय—सभी प्रकार के पदार्थ, ये सारे प्राणी अपनी आत्माओं और देवताओं के सहित

अपने अस्तित्व के लिए मेरे अधीन वा आश्रित हैं। वे अपने अस्तित्व के लिए मुझ-जैसे सूर्यों के सूर्य के पास ऋणी हैं।

प्रकाशों का प्रकाश मैं हूँ। स्वप्नों में हम जिन पदार्थों को देखते हैं, वे हमें दीपक के प्रकाश से नहीं दिखते और न सूर्य या चंद्रमा के प्रकाश की ही सहायता से दिखते हैं, फिर भी हम उन्हें देखते अवश्य हैं और यह भी हम जानते हैं कि बिना प्रकाश के हम उन्हें देख नहीं सकते हैं। तो फिर किस प्रकाश में हम वह सब देखते हैं? यह मेरे प्रकृत आत्म-स्वरूप का प्रकाश है, यह मेरे आत्मा का प्रकाश है, यह मेरा ही आलोक है, जो स्वप्न में सब कुछ आलोकित करता है। मैं स्वप्न में एक हीरा देखता हूँ तो वह मेरे ही प्रकाश से दिखाई पड़ता है। हीरे की दमक भी मेरे ज्योति-समुद्र में एक तरंग मात्र है। यदि मैं स्वप्न में चन्द्रमा देखता हूँ, तो वह अपनी प्रभा के सहित मेरी ही तेजप्रभा में एक लहर-मात्र है। यदि मैं सूर्य को अपने स्वप्न में उसके सारे प्रकाश में उद्भासित देखता हूँ, तो वह सूर्य और उसका प्रकाश भी मेरे शोभा-समुद्र में एक भँवर-मात्र है। जाग्रत अवस्था में भी यही दशा है। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और प्रत्येक वस्तु मेरे ज्योति-समुद्र में केवल लहरें हैं। मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। मैं संसार की ज्योति हूँ। मेरी उपस्थिति के समुद्र में प्रत्येक वस्तु—सूर्य, नक्षत्र, देवता सभी भँवर और लहरों की तरह आचरण करते हैं।

समुद्र से उठाया मैंने ही सूर्य को
चन्द्र की कलाएँ बदलतीं मेरे बल पर।

मैं सम्राटों का सम्राट हूँ। मैं ही, इस पृथिवी के प्रत्येक सम्राट के रूप में, प्रगट होता हूँ। विभिन्न उद्यानों में सब मनोहर पुष्पों के रूप में मैं ही प्रगट होता हूँ। परियों के मनमोहक मुखड़ों में से मैं ही मुस्कराता हूँ। सब योद्धाओं की मांसपेशियों को मैं ही चलाता

हूँ। मुझमें ही सारा संसार जीता है, और चलता-फिरता है। उसका अस्तित्व भी मेरे ही कारण है। प्रत्येक स्थान में मेरी ही इच्छा का पालन हो रहा है। मेरा ही साम्राज्य हर कहीं शासन कर रहा है। मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ। सूक्ष्मतम जीवाणु से लेकर वृहत्तम सूर्य तक का पोषण मैं करता हूँ। प्रत्येक प्राणी को प्रत्यह मैं भोजन पहुँचाता हूँ। मैं ही पृथ्वी से सूर्य का चक्कर लगवा रहा हूँ। संसार आरम्भ होने से पूर्व भी मैं था।

बुरे विचार और सांसारिक वासनाओं का सम्बन्ध मिथ्या शरीर और मिथ्या मन से है और वे अन्धकार की वस्तुएँ हैं। मेरी उपस्थिति में उन्हें आने का कोई अधिकार नहीं है। मैं ही वह परम आकाश या तेजोवह वायुरूप तत्त्व (Ether) हूँ जिसमें समस्त ब्रह्मांड और समस्त भौतिक आकाश बहते जा रहे हैं। आलोक की भाँति मैं प्रत्येक अणु और प्रत्येक पदार्थ में प्रवेश करता हूँ। मैं सबसे नीचा हूँ, मैं सबसे ऊँचा हूँ। मेरे लिए कोई भी निम्नतम या उच्चतम नहीं है। जहाँ कहीं मनुष्य की दृष्टि पड़ती है वहीं मैं हूँ। मैं ही दर्शक हूँ, मैं ही दृश्य हूँ और मैं ही अभिनेता हूँ। मैं ईसा में प्रगट हुआ। मुहम्मद में मैंने अपने को व्यक्त किया। संसार का सबसे विख्यात व्यक्ति मैं हूँ और सबसे अख्यात, अनादरणीय और पतित व्यक्ति भी मैं ही हूँ। मैं ही सर्व हूँ, सर्व हूँ। तुम्हारी वासना का पात्र कोई भी हो, वह मैं हूँ। अहा, मैं कितना सुन्दर हूँ। बिजली में मैं कौंधता हूँ, मेघ गर्जन में मैं गरजता हूँ, पत्तों में मैं पक्षियों की भाँति फड़फड़ाता हूँ, हवा में मैं सनसनाता हूँ, उमड़ते हुए समुद्र में मैं घुमड़ता हूँ। मैं ही मित्र हूँ और मैं ही शत्रु हूँ। इस संसार की अनित्य और क्षणिक कीर्ति या सम्पदा से सम्बन्ध रखनेवाली वासनाएँ तथा विचार, तुम दूर रहो। इस शरीर की कोई भी दशा क्यों न हो मुझसे इसका सरोकार नहीं है, समस्त शरीर मेरे हैं। मैं फ्रांकलिन था, मैं ही न्यूटन

रहा। लार्ड केलविन मैं हूँ, शक्तिशाली राम और प्यारा कृष्ण मैं हूँ। काण्ट के मस्तिष्क में मैंने ही काम किया था। यशस्वी शंकर और बुद्ध के हृदयों में मैंने ही प्रेरणा जगायी थी। मैंने ही शेक्सपीयर और प्लेटो आदि सभी को प्रकाश प्रदान किया। वे मुझ आदि-स्रोत के पास आते हैं और परिपूर्ण हो वे प्रभा और दीप्ति पाते हैं। वास्तव पुरुष को ये सांसारिक दुराकांक्षाएँ अन्धा बना देती हैं और नीचे की ओर घसीटती हैं। ऐ सुन्दर भूदृश्यों और गुलाब के उद्यानों, मुझसे दूर रहो। तुम सभी लोग मुझमें हो, तुममें से कोई भी मुझे अपने में समा नहीं सकते। यह सारा विश्व ब्रह्मांड मुझमें है। और फिर भी मैं प्रत्येक में और सबमें हूँ। मैं प्रत्येक के और सबके मन और विचार में हूँ। मैं प्रेमी के धड़कते हृदय में हूँ, मैं प्रिया के गर्वित हँसते हुए नयनों में हूँ। मैं प्रत्येक और सबकी नाड़ियों में धड़कता हूँ। मैं तुम में हूँ, तुम में हूँ। नहीं, कोई तुम और मैं हो ही नहीं सकता। कोई भेद नहीं। मैं ही मैं हूँ।

——:⊛:——

मैं आत्मा हूँ—अनदेखा, करता प्रबुद्ध
सकल शिष्ट अन्त:तत्वों को!
जलता हूँ मैं अग्निरूप हो;
दीपित हूँ मैं सूर्य-चन्द्र में, नक्षत्रों में और ग्रहों में।
पवन-संग हूँ प्रवहमान मैं, और तरंगित लहरों-संग हूँ।
नर-नारी हूँ, युवक-युवतियाँ (भी) मैं (ही) हूँ।
सद्य:जात शिशु और वृद्ध भी—कुम्हलाया-सा, झुका हुआ
अपनी लकुटी पर। जो कुछ भी है—मैं हूँ—
श्यामल भँवरा, बाघ, मछलियाँ,
अरुण-नयनयुत हरित परिन्दे; वृक्ष घास औ
मेघ-गर्भ में लिये दामिनी।

सारे मौसम और समुन्दर ! मुझमें हैं सब
आदि मुझमें, अन्त मुझी में ।

(उपनिषद्)



सूर्य की आभा में छिपा हूँ मैं
घहराते गानों में मौन हूँ ।
करता विश्राम हूँ
उत्तुंग लहरों के शीश पर
निद्रा में मैं शक्तिमान हूँ
मैंने लिक्खा भूत-अग्नि-अखरों में
पाहन से शब्दों में ।
मूँगे के सागर में मैंने महल रचाये ।
पौधे लगाये मैंने कोयले की,
समय और चिन्तन मेरे पारखी
उनके पंथ रहे शिव-सुन्दर ही
उन्होंने सागर को उँड़ेला, सेंक दी पर्तें
प्रस्तर की, मर्मर की, सीपी की ।

(इमर्सन)



सूर्यकिरण में अणुरेणु हूँ और हूँ मैं प्रज्वलित प्रचंड प्रभाकर भी ।
कानों में अणु के कहता मैं 'विश्रामो दो घड़ी यहाँ'
और सूर्य-कन्दुक से कहता लुढ़कने को अविराम गति ।
ऊषा की लालिमा हूँ मैं, हूँ मैं सांध्य-समीरण भी
पत्तों की मर्मर-ध्वनि लघु, उमड़न भयंकर समुन्दर की ।
मैं हूँ जाल, बहेलिया मैं, पक्षी और उसकी त्रस्त चीख भी;
दर्पण, प्रतिबिम्बित रूप, ध्वनि और गूँज भी मैं;

प्रेमिक की सावेश प्रार्थना कुमारी का अस्फुट भयनाद;
योद्धा मैं, घातक असिधार मैं
वीर-माता की हृदय-निचोड़, अश्रु-धार मैं।
मैं मादकता हूँ, द्राक्षा, आसव-यंत्र, कस्तूरी व मदिरा हूँ मैं
अतिथि हूँ, गृहपति भी,
यात्री और स्फटिक का पात्र।
वंशी की फूँक मैं हूँ, मानव का हूँ मन
स्वर्ण की आभा, हीरक की प्रभा
और निष्प्रभ समुद्री मोतियों का आलोक
गुलाब, उसकी कवि बुलबुल और बुलबुल-कंठ की मधुर तान
चकमक पत्थर, चिनगारियाँ, दीपक और मँडराते परवाने
मैं हूँ—भला-बुरा दोनो मैं हूँ, कार्य और अभिप्राय
प्रलोभन, लुब्ध—पाप, पापी—क्षमा, दंड सब मैं हूँ।
मैं हूँ—जो था कभी, है अभी और होगा कभी
सृष्टि का उत्थान-पतन।
शृंखला, अस्तित्व लड़ी हूँ, हूँ सभी का आदि-अन्त मैं।
देखो, वन-विटप कुटुम्ब मेरे
और मुझे धड़कानेवाला चट्टानों का प्राण बना;
मिट्टी है मांस मेरा, तो चाम है लोमड़ी मेरी
डाँस की भीषणता मैं हूँ तो मधुरता मौमाखी की।
प्रस्फुटित प्रेम मेरा पुष्प है
जल प्रवाहित है अलापता स्वप्नराग मेरा ही
ऊपर टँगा कुसुम मम सूर्य है
दामिनी में दमकता मैं बाजों की चीख सहित,
मैं कदापि नहीं मर सकता जदपि
मृत्यु सदा ताना-बाना बुनती रहे

आगे-पीछे।
जन्मा कभी न मैं, फिर भी मेरी साँस जनमती
असंख्य बार
नींदशून्य समुन्दर की अनगिनत लहरों-सी।
मेरी साँस सुरभित करती सुमनों को
नेत्र-ज्योति करती ज्योतित सूर्यालोक को
मेरे गालों की लाली सूर्यास्त में प्रतिभात होती
मेरा टीसभरा प्यार नक्षत्रों को जोर से जकड़ता।
मेरे ही रग-रग हैं मधुर नदी और झरने,
लहलहाते हरे वृक्ष हैं मनोरम केश मेरे
कैसी दानवी शक्ति है! पहाड़ हैं हाड़ मेरे
अहा आनन्द! यह धरा मनोहरा नववधू मेरी
नहीं, भेद की चर्चा हो न यहाँ। यह है परमाश्चर्य
मैं दूल्हा हूँ स्वयं और दुलहिन भी हूँ मैं।



लुढ़कते रहो, ऐ सूरज औ तारे, लुढ़कते रहो
परम-प्रकाश की ज्योति में क्षुद्र अणु सम!
और ऐ सूर्यों के सूर्य बढ़ चलो मुझमें।
ऐ ग्रह-मंडलों और भूगोलों
मेरे अन्दर विस्तीर्ण उद्वेलित महासमुद्र में
तुम हो केवल भँवर की लहरें
वहाँ तुम उठो गिरो कंपित हो तरंगायित होओ।
ऐ संसारों और ग्रहों, हो तुम केवल तकूटी मेरी
फिरकियाँ लो औ अंग-अंग खोल के दिखलाओ मुझे,
प्राण-प्रकाश के धूप का आनन्द लेते नृत्य करो तुम।
क्या स्वप्न की छायाएँ मेरी खचित होतीं

सूरज तारे धरती और उदधि द्वारा ?
मैं चलता, पलटता, जाता, आता,
गति, गतिशील और गतिकार मैं हूँ।
कोई भी विश्राम और गति न मेरी न तेरी।
कोई शब्द कदापि नहीं कर सकता वर्णन मेरा।
चमको-चमको नन्हे तारे
पलक मार मुझे बुलाओ कर इशारे।
दो जवाब ऐ सुन्दर तारे
बुलाते मुझे क्यों कर इशारे ?
मैं तो तुम्हारी पुतलियों की चमक हूँ
और प्राण हूँ तुम्हारे जीवन का।



टूट पड़ो तरंग-भंग में
अपनी बेलाभूमि पर हे समुद्र।
टूट पड़ो मेरे चरणों पर
अनजाने भावी लोक भी।
ऐ सूर्य, ओ आँधी, भूकम्प और युद्ध
स्वागत है तुम्हें
अपनी शक्ति मुझ पर परखो।
ऐ जल में दगने वाले गोलों, दगो
मेरे खिलौनों का धमाका भर तो हो
ऐ टूटनेवाले तारों, तीर तुल्य उड़ो मेरे !
ऐ जलते हुताशन ! नाश क्या कर सकता तू ?
ऐ अकड़बाज ! तेरी लौ मुझसे ही सुलगती है।
अरे लपलपाती तलवार और तोप के गोले !
मेरी ही शक्ति है तुझे सामने ले जाती सनसनाती।

मेरी विसर्जित देह पवन को उत्सर्गित है।
अनन्त बनाता खूब है मन्दिर मेरा !
सभी कान कान मेरे; सभी नयन हैं आँखें मेरी
सभी हाथ हैं हाथ मेरे; सभी के मन हैं मन मेरे
मैंने मृत्यु का गस्सा बनाया, विषमताओं को पी गया मैं
कितना ही मधुर और बलदायक भोजन यह मेरा
कोई भय नहीं, शोक नहीं, नहीं है कोई मर्म-पीड़ा
सब हर्ष का कारण है, चाहे धूप हो चाहे वृष्टि-क्रीड़ा ॥

  

अज्ञान और अन्धकार काँपता-सिहरता
थर्राता-ठिठुरता भाग गया—सदा के लिए लुप्त-अवलुप्त
मेरी ही जगमग रोशनी ने उसे तपाया झुलसाया
अमित हर्ष उल्लास ! अहा ! अमित हर्ष उल्लास !

ओं ! ओं ! ओं !



आत्मोपलब्धि के मार्ग में कुछ आपत्तियाँ

[१८ जनवरी, १९०३ को गोल्डेन गेट हाल, सैन-फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

सज्जनों और देवियों के रूप में मेरे ही आत्मस्वरूप,

इस छोटी-सी पुस्तिका* में ध्यान या मनन की जो विधि बतायी गयी है उस पर कुछ आपत्तियाँ उठायी गयी हैं। कुछ आपत्तियों पर हम विचार करेंगे। आप लोगों में से अधिकांश ने इस पुस्तिका को पढ़ा है और उसी पर की गयी आपत्तियों में से कुछ पर हम विचार करेंगे।

प्रथम आपत्ति—उपलब्धि की जो पद्धति आप हमें बताते हैं वह काल्पनिक है। किसी व्यावहारिक आधार की अपेक्षा, कल्पना और विचारों के अभ्यास से ही उसका अधिक सम्बन्ध है।

यह आपत्ति उठानेवालों को वेदान्त इस प्रकार उत्तर देता है:—

प्यारे आत्मस्वरूप, तनिक सावधानी से विचारिए। प्यारे आत्मन्, तनिक सोचिए। यह सारा संसार और इस संसार के समस्त शरीरों का कारण कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। गलत दिशा में की हुई आपकी सारी कल्पना और विचारों का प्रवाह आपके सब दुःख, क्लेश, चिन्ताएँ, कठिनाइयाँ और यातनाओं का

---

* 'आत्मोपलब्धि का मार्ग' शीर्षक से एक पुस्तिका युक्तराष्ट्र अमरीका से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में वह पुस्तिका ही प्रकाशित है।

कारण है। गलत दिशा में की हुई कल्पना और विचारधारा ही आपको बाँधती है और उचित व सही दिशा में की हुई कल्पना ही आपको मुक्त करती है। विष की चिकित्सा विष ही है। कल्पना के बन्धन से कल्पना ही मुक्ति दिला सकती है।

जिस सीढ़ी से आप गिरे, उदाहरण के लिए, वही सीढ़ी आपको ऊपर ले जायगी। उसी पथ से आपको पीछे लौटना पड़ेगा जिस पथ से चलकर आप दुर्दशा और चिन्ता में पड़े हैं। मुक्ति के लिए जिस प्रकार की कल्पना की वेदान्त सिफारिश करता है, वह ठीक उस कल्पना के विपरीत है, जिसने आपको नीचे गिराया है। इस प्रकार रोग भी आपके विपरीत है अर्थात् विष है, और उस विष की चिकित्सा विष भी साधारणतः विपरीत वस्तु है। फिर भी इसी पद्धति से आप अवश्य रोगमुक्त होंगे। वेदान्त सिद्ध करता है कि यह अखिल संसार आपकी कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, आपके अपने ही विचार और ख्याल के सिवा कुछ और नहीं है। अब इस विचार का शोधन कीजिए, इस विचार को उन्नत कीजिए, इसे उचित मार्ग पर लगाइए, फिर आप प्रकाशों के प्रकाश और विश्व-ब्रह्मांड में सर्वरूप हो जायेंगे।

एक व्यक्ति अतिसार, संग्रहणी से कष्ट पा रहा है। डाक्टर उसे जुलाब देता है और वह भला-चंगा हो जाता है। अतिसार के कारण उसे बार-बार पाखाने दौड़ना पड़ता था। अब अपनी इच्छा से खायी हुई; जुलाब की दवा भी वही काम करती है। किंतु दोनो में आसमान-जमीन का फर्क है। जुलाब तो दवा है और अतिसार बीमारी है। हालाँकि दोनो का कार्यस्वरूप एकसाँ है, उनमें बहुत बड़ा फर्क है। सांसारिक विचार आपको दास बनाता है, वह एक बीमारी है, वह आपको बाँधता है और आप सब प्रकार की परिस्थितियों का मुँह ताकते हुए रहते हैं। हर आँधी और तूफान

आपको अस्तव्यस्त कर सकता है। मानवीय विचार ही कल्पना का अतिसार है। उस जुलाव का प्रयोग कीजिए जो वेदान्त प्रदान करता है। यह भी एक तरह का विचार समझा जाता है। संसार के सभी विचार ऐसे ही हैं। किंतु सांसारिक विचार और मानवीय कल्पना अतिसार के समान है और वेदान्त द्वारा समर्थित विचार व कल्पना जुलाव के समान है। इस जुलाब का सेवन कीजिए और आपका रोग दूर हो जायगा, आपकी बीमारी भाग जायगी और आप सभी दुःख, क्लेश, दुर्दशा में मुक्त हो जायेंगे।

भारतवर्ष में कुछ लोग साबुन से हाथ नहीं धोते हैं बल्कि राख से धोते हैं। राख भी एक प्रकार की गन्दगी है, एक प्रकार की मिट्टी है और मल-मूत्र जिससे आपका हाथ गन्दा हुआ है वह भी एक प्रकार की मिट्टी है। यहाँ भी जब राख हाथों में लगायी जाती है और हाथ पानी से धो डाले जाते हैं, तो केवल हाथ का मैलापन ही नहीं छूट जाता, राख खुद भी धुल जाती है।

इसी प्रकार जिस विचार को आपको मनन करना पड़ेगा, उस प्रकार की कल्पना वेदान्त के उपदेश के अनुसार राख के समान है। आपकी प्रत्येक दुर्बलता और मलिनता को वह माँजकर स्वच्छ कर देगी। वह आपको उस प्रकार की कल्पना से ऊपर उठा देगी जिसकी चर्चा इस पुस्तिका में की गयी है।

एक मनुष्य स्वप्न देखता है। उसे स्वप्न में तरह-तरह की चीजें दिखायी पड़ती हैं। स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ कोरी कल्पनाएँ और ख्यालमात्र हैं। मान लीजिए कि वह स्वप्न में एक सिंह, शेर या साँप देखता है। वह नींद में चौंक पड़ता और जाग जाता है। यह शेर एक दुःस्वप्न है जो कि आपको जगा देता है यद्यपि स्वप्न में देखा हुआ यह शेर या सिंह आप ही की कल्पना की सृष्टि है। किन्तु आपके स्वप्न की यह वस्तु एक विचित्र कल्पना है, अद्भुत ख्याल

है। यह शेर या सिंह स्वप्न में अन्य सब विचारों को हर लेता है, स्वप्न में अन्य सब पदार्थों को हर लेता है। रम्य दृश्य, मनोहर भूभाग, प्रवाहित नदियाँ, विशाल भूधर, जिन्हें आप स्वप्न में देख रहे थे, सब के सब शेर या सिंह दिखाई पड़ने के बाद अदृश्य हो गये। अब आप जानते हैं कि शेर या सिंह घास या पत्थर नहीं खाते किन्तु आपके स्वप्न का वह शेर भी एक विलक्षण जीव है, क्योंकि सब भूभागों, वनों, जंगलों सब को वह खा गया। सभी चल दिये, स्वप्न देखनेवाले तक को उसने उद्विग्न कर दिया और साथ ही साथ अपने आप को भी वह खा गया। जागने के उपरान्त वह बिल्कुल दिखाई नहीं देता।

इसी प्रकार इस पुस्तक में जिस प्रकार के संकल्पों या कल्पना की शिक्षा दी गयी है, वह स्वप्न के शेर के समान है। समस्त संसार ही एक स्वप्न है। वह शेर आपको सब झूठी कल्पना और अविद्या से मुक्त कर देगा और साथ ही साथ अपने चंगुल से भी आपको मुक्त कर देगा। यह आपको वहाँ ले जायगा जहाँ सब प्रकार की कल्पनाएँ रुक जाती हैं, जहाँ सब भाषाएँ स्तब्ध हो जाती हैं। वह ऐसी अवर्णनीय वास्तवता में आपको पहुँचा देगा।

दूसरी आपत्ति—यदि हम परम चैतन्य की इस अवस्था में पहुँच जायँ जहाँ सब अन्य चेतनाएँ रुक जाती हैं, जहाँ सारे विचार रुक जाते हैं, तो क्या वह अवस्था शून्यता या रिक्तता की नहीं है? क्या वह अचेतनता या बोधशून्यता की दशा नहीं है? अचेतना की दशा में पहुँचने के लिए इतना कष्ट उठाने से क्या लाभ है? हमें वह न चाहिए।

इस आपत्ति पर वेदान्त का उत्तर है, "अरे भाई नहीं, अरे मेरे आत्मस्वरूप! जरा सोचो, जल्दी मत मचाओ। उपलब्धि की इस दशा और मूर्छा व बेहोशी की दशा में बहुत बड़ा अन्तर है। एक बात

दोनो में समान है; दोनो में ही सभी विचार रुक जाते हैं। मूर्छा में कोई विचार नहीं करता और आत्मोपलब्धि या समाधि की दशा में भी कोई विचार नहीं रहता। फिर भी उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है।"

मूर्छा में मन ने विचार करना बन्द किया और विचार की इस स्थिरता से अकर्मण्यता को अधिकता हुई और अकर्मण्यता की इस अधिकता के द्वारा मूर्छा की उत्पत्ति हुई थी। मूर्छा में क्रियाशीलता की कमी के कारण विचार रुक गया—मूर्छा मृत्यु के समान है। किन्तु समाधि या आत्मोपलब्धि की अवस्था पूर्ण-उद्योग, पूर्ण शक्ति, पूर्ण-ज्ञान और पूर्ण आनन्द है।

आप जानते हैं कि प्रकाश के अभाव को अन्धकार कहा जाता है। यदि हम ऐसे कमरे में प्रवेश करें, जिसमें बहुत कम प्रकाश हो, तो हमें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। अति-प्रकाश की बहुलता भी मनुष्य के नेत्रों के लिए व्यवहार में अन्धकार ही के सदृश है। दोपहर के अत्युग्र प्रकाशवाले सूर्य की ओर क्या आप देख सकते हैं? सूर्य में आज जितना प्रकाश है यदि उससे बहुत अधिक होता, यदि वह दसगुना होता तो कोई मनुष्य सूर्य की ओर देख न सकता। विज्ञान हमें प्रकाश के चुम्बकीकरण के चमत्कार की बात बताता है। प्रकाश की दो किरणें जहाँ विरुद्ध दिशाओं में होती हैं, वहाँ मनुष्य के नेत्रों को सुझाई नहीं पड़ता, वहाँ अन्धकार होता है। प्रकाश की अधिकता भी मानव नेत्रों के लिए अन्धकार है। और प्रकाश का अभाव या कमी भी मनुष्य के नेत्रों के लिए अन्धकार है। प्रकाश-अभाव-मूलक अंधकार एक वस्तु है और अति-प्रकाश-मूलक अंधकार दूसरी वस्तु है।

इसी प्रकार आत्मोपलब्धि की अवस्था में विचार-क्रिया का स्थगित होना और गाढ़ी नींद या मूर्छा में विचार-क्रिया का रुकना

दोनो विपरीत ढंग के हैं। दोनो के परवर्ती प्रभाव पर नज़र डालने पर हमें यह भेद दिखाई पड़ता है।

एक व्यक्ति मिरगी रोग से पीड़ित है। जिस समय उस पर मिरगी का दौरा आता है, उसके बाद वह व्यक्ति दुर्बल, अशक्त, मृतप्राय-सा और खोया हुआ-सा लगता है। जिस समय दौरा आता है उस समय वह बेहोश होता है।

दूसरा व्यक्ति आत्मोपलब्धि या एकाग्रता की इस अवस्था में प्रवेश करता है और उतने समय के लिए उसकी सारी मानसिक क्रियाशीलता मानो रुक जाती है। और इस अवस्था में उसके विचारों का अवरुद्ध होना देखने में तो मिरगी से आक्रान्त व्यक्ति के विचार-क्रिया के अवरोध के समान है, किन्तु दोनो के अन्तर पर ध्यान दीजिए। मिरगी वाला व्यक्ति बाद में दुर्बल, अशक्त, और बेकाम हो जाता है किन्तु आत्मोपलब्धि के उन सुहावने पर्वतों से उतरने के बाद, उस परमानन्द अवस्था से निकल आने के बाद मनुष्य उद्योग से भरा, शक्ति से परिपूर्ण, आनन्दमय और ज्ञान से परिपूर्ण होता है। वह दूसरों को रोगमुक्त और बलवान बना सकता है, वह दूसरों को समुत्थित और उन्नत कर सकता है और स्वयं बिल्कुल दुर्बल या अशक्त नहीं होता है। इसलिए आप देखते हैं कि वैदान्तिक आत्मोपलब्धि में विचार-क्रिया का रुकना और मूर्छा या बेहोशी की अवस्था में विचार-क्रिया का रुकना ये दोनो बिल्कुल दो विपरीत दिशाओं में हैं।

तीसरी आपत्ति—हम कहते हैं कि हमें जीवन चाहिए, जीवन चाहिए, हम निष्क्रियता नहीं चाहते हैं।

वेदान्त कहता है, "निष्क्रिय मत होओ, इच्छा करते जाओ, रुको मत।" सत्य बड़ा ही विरोधाभासी है। दोनो पक्षों का विचार करना चाहिए। जो समझते हैं कि वेदान्त निराशावाद की शिक्षा

देता है, वे भ्रम में हैं। वेदान्त आपको उचित मार्ग पर चलने की शिक्षा देता है जिससे सारा संसार आपके नियंत्रण में हो।

अब हम इच्छा या वासना के प्रश्न पर विचार करेंगे।

वेदान्त का यह अभिप्राय नहीं है कि आप निष्क्रिय जीवन बितावें। कदापि नहीं। वेदान्त सदैव कर्ममय जीवन की शिक्षा देता है। वेदान्त के अनुसार किसी भी व्यक्ति में इच्छाओं या वासनाओं का होना अच्छा है, किन्तु हमें इनका उचित उपयोग करना चाहिए। इच्छा क्या है ? इच्छा या वासना प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। साधारणत: 'प्रेम' शब्द का अर्थ किसी वस्तु के लिए 'प्रबल इच्छा' माना जाता है। यदि 'प्रेम' किसी वस्तु के लिए 'प्रबल इच्छा' है तो फिर सब प्रकार ही इच्छा प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और यह कहा जाता है कि प्रेम ही ईश्वर है, अत: सब इच्छाएँ ईश्वर हैं। यह वस्तुत: सत्य होने से, वह मनुष्य कितना सुखी होगा जो सर्व प्रकार की इच्छाओं से अपने जीवन की अनन्यता की उपलब्धि करता है और तब वह बोध करता है कि वह स्वयं, उसकी अपनी सच्ची आत्मा, समस्त संसार में इच्छा के रूप में व्याप्त है और सारे संसार का शासन और नियंत्रण करती है। वह व्यक्ति कितना सुखी हो जाता है, जो इच्छा की सर्व-शासक शक्ति से अपनी एकता अनुभव करता है, जो समझता है या बोध करता है "मैं ही सब इच्छाओं का स्रोत हूँ", "सम्पूर्ण इच्छा का हेतु मैं हूँ।" पिता, मूल, मुख्य स्रोत और इस संसार की सारी इच्छाओं की आत्मा मैं हूँ और इस प्रकार से मैं इच्छा की लगामों द्वारा सारे संसार पर शासन करता हूँ। लगामें मेरे हाथों में हैं और मैं वह हूँ जो इन लगामों को पकड़े हुए है और जो इन देहों पर शासन कर रहा है। ज्योंही आप इस विन्दु पर पहुँच जाते हैं, त्योंही सारी घृणा और ईर्ष्या समाप्त हो जाती है। मित्रों और शत्रुओं की इच्छाएँ मेरी

इच्छाएँ हैं। मैं वह अनन्त शक्ति हूँ जो उन इच्छाओं या वासनाओं का शासन वा नियंत्रण करती है। इस या उस व्यक्ति की दुराकांक्षाएँ और याचनाएँ मेरी हैं। अरे मैं सुखी हूँ, सच्ची आत्मा हूँ, सम्पूर्ण ब्रह्मांड का शासक हूँ।

लोग इच्छाओं का दुरुपयोग करते हैं। वे वस्तुओं को उलट-पुलट देते हैं। यदि इच्छा ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है, तो वेदान्त कहता है कि आप उपलब्धि करें आप समग्र इच्छा हैं किन्तु उसका दुरुपयोग न करें। एक इच्छा को तो अपनी और अन्य सब इच्छाओं को दूसरों की कहने की गलती मत कीजिए। इच्छाएँ तब हानिकारक होती हैं जब एक इच्छा दूसरी के विरोध में आचरण करती है। सब इच्छाएँ प्रेम के सागर में तरंगों, लहरों तथा भँवरों के समान हैं। समग्र विश्व प्रेम के एक अनन्त समुद्र का बना हुआ है जिसे आप इच्छा कह सकते हैं। नक्षत्रगण गुरुत्वाकर्षण के कारण एकसाथ रुके हुए हैं। गुरुत्वाकर्षण आकर्षण है और इस कारण वह आकर्षण प्रेम है। रासायनिक संयोग (Chemical combinations) रासायनिक मिलन-प्रवृत्ति (Chemical affinity) की शक्ति से घटित होते हैं। वह अणु-अणु (Atoms) में परस्पर प्रेम है। 'अणु का अणु से प्रेम' को मिलन-प्रवृत्ति (Affinity) कहते हैं। दो ग्रहों में प्रेम को गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। परमाणुओं (Molecule) के पारस्परिक प्रेम को मिलन-प्रवृत्ति कहते हैं। यह पुस्तक, संयोग की शक्ति से एक पुस्तक के समुच्चय रूप में है। संयाग अथवा अनुरूपता म है।

प्रेम के महासमुद्र में यह सम्पूर्ण संसार तरंगों और लहरों के तुल्य है। और विज्ञान यह सिद्ध करता है, लार्ड केलविन (Lord Kelvin) तथा दूसरों ने भी यह सिद्ध किया है कि "सारे पदार्थ

शक्ति के सिवाय कुछ और नहीं हैं।" अब इस संसार में शक्ति मुख्यत: गुरुत्वाकर्षण, अनुरूपता, रासायनिक मिलन-प्रवृत्ति, विद्युत्, चुम्बकत्व, प्रकाश, ताप आदि के रूप में प्रकट होती है।

चुम्बकत्व और विद्युत्—इन दोनो में क्या है? आप उनमें आकर्षण पाते हैं। लगता है कि ताप पृथक्कारी है और कणों को अलग करता है लेकिन दूसरे स्थितिविन्दु से देखकर विज्ञान सिद्ध करता है कि एक दृष्टिकोण से जो पृथक्करण (Separation) या विलयन (Dissolution) है, वही दूसरे दृष्टिकोण से प्रेम एवं आकर्षण है।

शक्ति के समुद्र में भँवर और लहर मानो यह समस्त संसार है। वेदान्त के अनुसार, वह बल, शक्ति का वह तेज आपका सच्चा स्वरूप है। आप वही हैं। यह अनुभव करें। वही शक्ति और शक्ति का तेज प्रेम कहलाता है।

डारविन (Darwin) तथा अन्य विकासवादियों ने, अस्तित्व के लिए संघर्ष (Struggle for existence) पर अवलम्बित जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उसकी पूर्त्ति (Complement) या परिपूर्त्ति (Supplement) ड्रमंड (Drummond) जैसे चिन्तकों ने की है। वे स्पष्ट करते हैं कि विकास केवल संघर्ष और संग्राम के द्वारा ही नहीं होता बल्कि अधिकतर प्रेम, प्रभाव तथा आकर्षण द्वारा होता है।

इच्छा मात्र प्रेम है और प्रेम ईश्वर है और वह ईश्वर आप हैं। उससे अपनी अनन्यता की उपलब्धि करते ही आप प्रत्येक वस्तु से ऊपर उठ जाते हैं। लोग इच्छा के इन भँवरों या आवर्त्त को देखकर इस प्रकार भ्रम में पड़ते हैं जिस प्रकार मनुष्य समुद्र में उठ रही भँवरों और लहरों को समुद्र से प्रथक समझने का भ्रम करता है।

उदाहरण के लिए, यहाँ एक झील है और हम कहते हैं, "आओ, बच्चा, देखो यह एक सुन्दर प्रशान्त झील है।" थोड़ी देर बाद एक आँधी आती है और झील के शान्त, अक्षुब्ध सतह पर कुछ लहरें, हिलोरें और तरंगें उठती हैं और आप कहते हैं, "बच्चे, देखो, इसमें तरंगें और भँवर हैं।" प्रशान्त जल को हम भूल जाते हैं और झील के ऊपर के नये रूप रूपों पर हम विचार करते हैं। अब भी जब उस झील में भँवरें और तरंग हैं, जल है और भवरें वही जल है जो झील है।

झील की सतह जब शान्त थी तब वहाँ जल था और अब भी जब कि झील का जल क्षुब्ध और आन्दोलित है, वहाँ जल है। किन्तु भँवर और आवर्त्त आदि नये रूप प्रकट हो गये हैं और हम बच्चे से आकर जल देखने को नहीं कहते बल्कि बच्चे का ध्यान भँवरों और आवर्त्तों की ओर खींचते हैं। यहाँ भँवरों और लहरों ने जल को अँधेरे में डाल दिया है। भँवरों और आवर्त्तों ने झील को ढक लिया है। लहरों की कल्पना झील या जल की कल्पना पर छा गया है। इसी प्रकार से, मनुष्यों के मामले में, इच्छाएँ एक प्रकार की लहर या भँवर हैं, एक रूप मात्र हैं। इच्छा का यह रूप सत्य की कल्पना पर छा जाता है। रूप से सत्य दबा दिया जाता है। वेदान्त चाहता है कि आप रूप का विवेचन करें, इसकी उपेक्षा न करें। किन्तु भँवर और लहर के रूप का विवेचन करते समय उसके आधार-भूत सत्य की उपेक्षा न कीजिए। इस प्रकार जब कोई व्यक्ति बदला लेता है तो आप अपने को अपमानित समझते और भीषण रूप से क्रोधित हो जाते हैं। विधान की उपलब्धि करें। विधान यह है कि आपने अपने मन को प्रकृति के ताल से पृथक् कर लिया है और वह व्यक्ति आकर दिखला देता है कि आप प्रकृति से समस्वर नहीं हैं। अपने को रोगशून्य

कीजिए और वह व्यक्ति आपका निरादर नहीं करेगा। यही विधान या नियम है। धर्मशास्त्रियों को चाहिए कि वे इस विषय को लेकर सर्वसाधारण को ज्ञान दें। जिस क्षण आप निराशा या प्रकृति से संघर्षरत हो जाते हैं, उसी क्षण सारा संसार आपके विरुद्ध खड़ा हो जाता है।

मानसिक शान्ति को विकसित कीजिए। अपने मन को पवित्र विचारों से पूर्ण कीजिए और फिर कोई आपके विरोध में खड़ा नहीं हो सकता। यही विधान है। वेदान्त कहता है, "दूसरों की या अपनी इच्छाओं का गलत उपयोग मत कीजिए।" यदि आप अपना संतुलन बनाये रखें तो वे सभी इच्छाएँ जो आपके मन में प्रकट हो रही हैं, काबू में आ जायेंगी और अवश्य ही अदृश्य हो जायेंगी। यदि आप उनके प्रति उचित भाव रखें तो समय पर विलक्षण ढंग से वे उपलब्ध हो जायेंगी। आपकी अपनी इच्छाओं के प्रति भ्रान्त भाव रखने से ही आप मामलों को भ्रष्ट कर देते हैं और अवांछनीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।

अपने मन में प्रकट होनेवाली इच्छाओं का उचित उपयोग कीजिए। यह कैसे किया जा सकता है? हम एक उदाहरण देते हैं। एक व्यक्ति घोड़े पर सवार हो किसी दूर स्थान को जा रहा है। घोड़ा थका हुआ-सा लगता है। वह व्यक्ति उसे अवश्य खिलायेगा किन्तु घोड़े की थकान या भूख को वह अपने ऊपर नहीं लेता। वह जानता है कि घोड़ा थका और भूखा है और उसकी आवश्यकताओं को वह पूरा भी करेगा किन्तु उसकी थकान को वह अपने ऊपर आरोपित नहीं करेगा। वह घोड़े की सेवा करता है, किन्तु अपने को उद्विग्न, अशान्त, क्षुब्ध और निरानन्द दशा में नहीं ले आता।

आत्मोपलब्ध मनुष्य या सच्चा वेदान्ती इस देह को उसी

प्रकार देखता है जिस तरह घुड़सवार अपने घोड़े को देखता है। यदि शरीर क्लान्त और क्षुधार्त्त है, यदि पेट भोजन या जल चाहता है, तो सुलभ होने पर वह शरीर को आवश्यक भोजन या जल दे देगा किन्तु साथ ही साथ वह अपने को भूख और प्यास से ऊपर रखेगा। यह एक विचित्र कल्पना-सी लगती है, लेकिन जब आप इसका अभ्यास करने लग जायँगे, तब तत्क्षण इसकी उपलब्धि आपको हो जायगी। यह व्यावहारिक है।

भूख और प्यास शरीर की बातें हैं और मन उसका बोध करता है। किन्तु वह स्वयं, उसका सच्चा आत्मस्वरूप, इससे व्यथित तथा व्यग्र नहीं होता। जो अपने स्वरूप को, जो स्वयं ईश्वर है, उपलब्ध करता है, वह शरीर की क्लान्ति, क्षुधा या पिपासा से व्यथित या व्यग्र नहीं होता। घोड़े की थकन और भूख घुड़सवार को व्यग्र नहीं करती, उनका बोध वह करता है, किन्तु वे उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचातीं। इसी प्रकार देह की परिस्थितियाँ और परिवेश कुछ पदार्थों की माँग करते हैं। अपने आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए मन और बुद्धि को उन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है और ये आवश्यकताएँ इच्छाओं के समान हैं। वेदान्ती मन की इन इच्छाओं को देखता है किन्तु जब उसका मन इन इच्छाओं का अवलोकन करता है तब भी एक आत्मोपलब्धि-प्राप्त मनुष्य अपना सिर पानी से ऊपर उठाये रहता है, वह वासना व इच्छाओं से परे है। उसके लिए कोई भी इच्छा व्यथा या पीड़ा का कारण नहीं बनती। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार एक चिड़िया पेड़ की एक टहनी पर बैठी हुई है और वहाँ कुछ देर तक बैठी रहती है, टहनी इधर-उधर हिलती है किन्तु चिड़िया इसकी परवाह नहीं करती, वह बिल्कुल निश्चिन्त बैठी रहती है; क्योंकि वह जानती है कि टहनी अगर टूटकर जमीन पर भी गिर जाय

तो भी उसके पास डैने हैं। वह सदा ऐसे रहती है मानों डैनों के सहारे है। चिड़िया टहनी पर बैठी है किन्तु फिर भी उससे परे है। देखने में लगता कि वह टहनी पर आश्रित है किन्तु यथार्थ में वह टहनो से ऊपर है। इसी प्रकार वेदान्ती देखने में शायद यों लगें कि साधारण लोगों की तरह उनमें भी इच्छाएँ हैं, किन्तु फिर भी वे उससे परे हैं। जब एक वेदान्ती कोई इच्छित वस्तु खो देता है तो उसे कोई व्यथा या पीड़ा नहीं हो सकती। सब तरह की इच्छाएँ रखनेवाले लोग, इच्छित वस्तु से बिछुड़ जाने के बाद, ठंडी साँसें भरते और रोते हैं क्योंकि वे उन पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर होते हैं। वेदान्ती उस पर निर्भर नहीं करता।

यह एक पेन्सिल है, जो किसी व्यक्ति की है। यदि यह खो जाय तो क्या आप दुखित होंगे ? नहीं। हो सकता है कि आप उसके लिए खोज-तलाश करें किन्तु यदि वह न मिले तो आपके लिए कोई बात नहीं। मान लीजिए कि आपके पाँच हजार रुपये खो जाते हैं। अरे तब आपका दिल टूट जायगा। आप पेन्सिल की भी खोज करते हैं और पाँच हजार रुपये की भी, किन्तु खोजने के ढंग में आकाश-पाताल का अन्तर है। आप जब पाँच हजार रुपया ढूँढ़ते हैं तो टूटा दिल लेकर, किन्तु टूटा दिल लेकर आप पेन्सिल नहीं ढूँढ़ते हैं। वेदान्ती के निकट पाँच हजार रुपये का खोना और पेन्सिल का खोना समान है। एक कहानी के द्वारा हम इसका दृष्टान्त देंगे।

भारतवर्ष में एक साधु एक बड़े नगर के राजपथ पर जा रहा था। एक महिला उसके पास आयी और उसे अपने घर ले जाने के लिए बुलाने लगी। उसने प्रार्थना की कि कृपया मेरे घर पधारिए। वह उसके साथ गया और जब उसके

घर पर पहुँचा तो महिला उसके लिए एक कटोरा दूध ले आयी। अब, यह दूध एक बटलोई में उबल रहा था और उसमें काफी मलाई जम आयी थी। जब दूध कटोरे में डाला गया तब सारी मलाई कटोरे में गिर पड़ी। भारतवर्ष में महिलाएँ मलाई देना पसन्द नहीं करतीं। इसलिए जब उसने मलाई कटोरे में गिरते हुए देखा तो वह बहुत परेशान हुई। विकल होकर वह बोल पड़ी, "हाय राम, हाय हाय!" उसने दूध में चीनी मिलाकर दूध से भरा सुन्दर कटोरा साधु को दे दिया। उसने कटोरा उससे ले लिया और उसे मेज पर रखकर बातचीत करने लगा। महिला ने समझा कि ज्यादा गर्म होने की वजह से साधु दूध नहीं पी रहा है। अंत में जब साधु उसके घर से चलने को हुआ तो महिला ने कहा, "क्या महाराज आप यह दूध पीकर मुझे आभारी नहीं बनाएँगे?" भारत में नारियाँ सदा देवियाँ कहकर सम्बोधित होती हैं। साधु ने कहा, "हे देवि! यह किसी साधु द्वारा स्पर्श किये जाने के योग्य नहीं है।" महिला ने पूछा, "क्यों, क्या कारण है?" साधु ने उत्तर दिया, "जब तुमने दूध डाला, तब उसमें शकर और मलाई छोड़ी और उसके साथ कुछ और भी मिलाया। तुमने उसमें 'हाय-हाय' भी मिला दी है और जिस दूध में 'हाय-हाय' मिला दी गयी है, उसे मैं पी नहीं सकता।" इस उत्तर से वह लज्जित हुई और साधु उस घर से चला गया।

साधु को दूध देना तो ठीक था किन्तु उसमें 'हाय-हाय' मिलाना गलत था। इसलिए वेदान्त कहता है, "काम करो, इच्छाओं की पूर्त्ति करो किन्तु कुछ करते समय तुम्हारा दिल क्यों टूटने लगता है?" उसे मत मिलाओ। कार्य करते समय काम में वह 'हाय-हाय' कभी न मिलाओ। कार्य करो, किन्तु सम्पूर्ण-रूप से निरासक्त ढंग से। अपना संतुलन मत खोओ। अपनी परिस्थितियों

के साथ अपने आप को अनुकूल बनाओ, और तुम देखोगे कि जब तुम कोई काम यथार्थ भाव से करोगे तो वह काम बड़े ही आश्चर्यजनक रूप से और विलक्षणता के साथ सफलता-मंडित होगा।

अब, आपकी स्थिति कैसे व्यवस्थित हो, आपका सम-तोलन कैसे बना रहे। लोगों में यह बड़ी कठिनाई है कि उनके सब सम्बन्ध और सम्पर्क अवैज्ञानिक, अपवित्र और शिथिल हैं। वेदांत कहता है कि आपके सम्बन्ध और सम्पर्क आपके सहायक होने चाहिए, न कि बाधक। इस संसार में प्रत्येक वस्तु जो आपको मिले वह पथरोधकारी चट्टान न होकर ऊपर ले जानेवाला सोपान होना चाहिए। अपने पथरोधकारी पत्थर को उन्नतिकारी सोपान-शिला बना लीजिए।

आप जानते हैं कि यदि यह कमरा अँधेरा हो और हम इसमें प्रवेश करें तो पहले हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। किन्तु जब हम उस अँधेरे में बहुत देर तक देखते रहेंगे तब उस अँधेरे कमरे की सभी वस्तुएँ दिखलाई पड़ने लगेंगी, ध्यान से दृष्टि गड़ाने पर सब पदार्थ दीख पड़ेंगे।

वेदान्त कहता है कि ये सब सम्बन्ध जो आपको बाँधे हैं, जो आपकी सच्ची वास्तवता या ईश्वर से आपको अलग रखते हैं, इनके उस पार तक आपको देखना चाहिए, इनका निरीक्षण करना चाहिए, ध्यान से इनका अवलोकन करें और वे सब पारदर्शी हो जायेंगे, आप इनके आरपार देखने में समर्थ होंगे और इनसे भी आगे आप परमेश्वर को देख सकेंगे। पहले-पहल यह विचित्र-सी बात लगेगी किन्तु धीरे-धीरे इसका अभ्यास हो जायगा। अपनी स्थिति सुधारने से, ठीक ढंग से वस्तुओं को देखने से, आपके सभी सम्बन्ध, सभी सम्पर्क, शीशे के टुकड़े के समान पारदर्शी बन जाते

हैं; वे आपकी दृष्टि को नहीं रोकते। इस प्रकार वेदान्त चाहता है कि आप अपनी स्थिति सुधारें ताकि प्रत्येक वस्तु पारदर्शी बन जाय और आपके लिए बाधक स्वरूप न रहे। नहीं, नहीं, यदि आप वेदान्त को ठीक तरह से समझ लें, उसकी शिक्षा आप ग्रहण कर लें, तो यह आपके लिए संभव है। यहाँ तक वह संभव है कि पत्थर को भी आप शीशे में बदल डालें, और केवल पारदर्शी शीशे में ही नहीं बल्कि उन्हें ऐनकों के शीशों (Lenses) में, दृष्टि के सहायक के रूप में बदल दें जिनसे दृष्टि को कोई बाधा न मिले बल्कि उसे सहायता मिले। अणुवीक्षण यंत्र (Microscope) सहायता देते हैं, उससे दृष्टि में कोई कमी नहीं होती।

यदि एक टन (करीब २८ मन) या अधिक चारा हाथी की पीठ पर लादा जाय तो वह बोझ वह अवश्य ढो लेता है, किन्तु उसे उस बोझ को ढोने में कठिनाई होती है और उसे सारी शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। यह एक टन या उससे ज्यादा घास, चारा या पुआल हाथी की पीठ पर ढोया जाता है और यह बोझा हाथी के लिए कष्ट और असुविधा का कारण बन जाता है। किन्तु जब वही घास, चारा या पुआल हाथी खाता है और उसे पचाकर अपने शरीर के रूप में उसे ढोता है, तो क्या उस समय वही बोझा उसके लिए शक्ति और बल का स्रोत नहीं बन जाता है? अवश्य बनता है?

इसलिए वेदान्त आपसे कहता है कि आप सारे संसार का बोझा अपने कन्धों पर लीजिए। यदि आप उन बोझों को अपने सिर पर लाद लेंगे तो उनके भार से आपकी गर्दन टूट जायगी। यदि आप उन्हें आत्मसात् कर लें या पचा लें, उन्हें अपना बना लें या यों कहिए कि आप उन्हें खा लें, अपने आत्म-स्वरूप के रूप

में उसकी उपलब्धि कर लें, तो आपकी प्रगति शीघ्रगामी होगी, आप पिछड़ने के बजाय आश्चर्यजनक रूप में उन्नत होते जायँगे।

जब आप वेदान्त की उपलब्धि कर लेते हैं तो आश्चर्यों में परमाश्चर्य! आप ईश्वर का दर्शन करते हैं। आप ईश्वर खाते हैं, आप ईश्वर पीते हैं और ईश्वर आप में रहता है। जब आप ईश्वर की उपलब्धि कर लेंगे, तब आप ऐसा ही देखेंगे। आपका भोजन ईश्वर में रूपान्तरित हो जायगा। प्रति पदार्थ से ईश्वर की आँखें झाँकती हैं। एक वेदान्ती की आँखें प्रत्येक वस्तु को ईश्वर बना देती हैं। यहाँ पर प्रत्येक पदार्थ प्रिय तथा ईश्वरीय है। ईश्वर प्रत्येक दिशा से हमारा सामना कर रहा है। प्रत्येक कोने से हमारी ओर देख रहा है। सारा संसार ही स्वर्ग में रूपान्तरित हो गया है। इस प्रकार वेदान्त आपसे आपकी इच्छाएँ छीनकर आपको दुखी नहीं करता, किन्तु वेदान्त आपको अपनी इच्छाएँ व्यवस्थित करने को बाध्य करता है और इन इच्छाओं को आपके अधीन कर देता है। वेदान्त यह चाहता है कि इच्छाओं द्वारा आप अत्याचारित न हों, यह चाहता है कि आप उनके मालिक हो जायँ।

यह एक घोड़ा है और एक आदमी घोड़े की दुम पकड़ लेता है। घोड़ा लात झाड़ता, पिछड़ता और सरपट भागता है, उछल-कूद मचाता और उस दुम पकड़नेवाले को लिये-लिये फिरता है। क्या यह एक वांछनीय या सरल परिस्थिति है? यही सांसारिक लोगों का तरीका है। इच्छाएँ घोड़े के समान हैं और वे घोड़ों की दुमों को पकड़े हुए हैं और घोड़ा-रूपी इच्छाएँ लोगों को अपने पीछे घसीटती हैं और उन्हें अति अधम तथा दीन दशा में डाल देती हैं। वेदान्त कहता है, "इच्छा रूपी अश्व की दुम न पकड़ो। परिस्थिति के प्रभु बनो, दास नहीं। जब आप आत्मस्वरूप की उपलब्धि कर लें तब आप देह के प्रभु बन जा सकते हैं। जब आप अपने

अन्तर में ईश्वरत्व की उपलब्धि कर लें, केवल तभी आप उस पर प्रभुत्व कर सकते हैं—अन्यथा नहीं।"

अभी एक और आपत्ति है—

इस पुस्तक में बताये हुए ढंग से यदि हम अपने मन, विचार और कर्म-शक्ति को एकाग्र करते जायँ तो क्या उसकी प्रतिक्रिया न होगी? क्या मस्तिष्क पर इसकी प्रतिक्रिया न होगी, क्या वह मस्तिष्क को दुर्बल न बना देगा?

नहीं, नहीं। राम अपने व्यक्तिगत अनुभव से आपको बताता है कि दिन प्रतिदिन आपमें शक्ति ही शक्ति आती रहेगी। किसी प्रकार की दुर्बलता उत्पन्न न होगी बल्कि शक्ति, तेज, उत्साह, उमंग और अमित बल आपको प्राप्त होगा। अभ्यास की विधि के बारे में कुछ शब्द कहने आवश्यकीय हैं।

प्रातः काल या किसी अन्य समय, इस पुस्तक में वर्णित कुछ विधियों का अभ्यास जब आप आरम्भ करेंगे, आपका मन ईश्वरत्व, परमानन्द तथा अति-चेतनता में लीन हो जायगा। जब आप इस अवस्था में पहुँच जायँ तो ओं का उच्चारण मत करते रहिए। उसे बन्द कर दें। वह अवस्था जितनी देर स्थायी हो, रहने दीजिए। सांसारिक तथा शारीरिक चेतनता आप से आप आ जायगी। जबर्दस्ती कुछ भी मत कीजिए ओं का उच्चारण भी नहीं। हो सकता है कि आप में से बहुत-से लोग आधे घंटे तक चेतना की इस समुन्नत दशा (Super-consciousness) में रहें। शायद घंटा भर रहें, दो घंटे, तीन घंटे या उससे अधिक समय तक रहें; किन्तु आनेवाले कल आप इस अवस्था को इससे अधिक समय बनाये रह सकेंगे। दिन प्रतिदिन वह समय बढ़ता जायगा और इस प्रकार क्रमशः धीरे-धीरे आपकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती जायगी।

इस अभ्यास के प्रारम्भकों को आधे घंटे से अधिक समय लगाने की सलाह राम नहीं देता। राम उन्हें सलाह देता है कि वे इस अभ्यास को २० या २५ मिनट में ही सीमित रखें। किन्तु जो लोग पहले से इस अभ्यास के आदी हैं वे आप ही आप इस अभ्यास में अधिक समय लगाते जायेंगे।

सामान्यत: नियम यह है कि अधिक आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले और वे लोग जो इस विचारधारा में पहले ही से कुछ किये हुए हैं, नवागतों से अधिक उपलब्धि करेंगे। इस विचार के साथ पहले से जितना ही अधिक आप आकर्षित या उत्साहित होंगे उतना ही अधिक आप उस अवस्था में अधिक समय तक रहना पसंद करेंगे।

एक बात और। जब आप मन को एकाग्र करने लग जायँगे और ईश्वर-चेतनता की उपलब्धि करने लगेंगे, तब आपके मन के सामने कुछ न कुछ कल्पनाएँ आ पहुँचेंगी। उस समय ओं का उच्चारण करते रहिए और साथ ही साथ उस विचार या कल्पना का डोरा पकड़कर उसका अन्त कर दीजिए।

जब कोई व्यक्ति ओं जप रहा हो और पवित्र अनन्तस्वरूप उसके चारो ओर हो, जब उस व्यक्ति का मन आध्यात्मिक प्रगति पर तुला हुआ हो, तब यदि कोई सांसारिक विचार आ जाय तो उसका इस प्रकार विश्लेषण करना और ऐसा सार निकालना चाहिए कि भावी जीवन में वह आचरण की अधार-शिला बन सके। अब इस पर पूरा ध्यान दीजिए, क्योंकि भले ही अब तक आपके अनुभव में ऐसी बाधाएँ न आई हों, परंतु आपके साधना-काल में ऐसे सांसारिक विचार अवश्य अवरोध उत्पन्न करेंगे। उस समय राम के कहे हुए इन शब्दों से आपका उपकार होगा।

मान लीजिए कि आप ओं का उच्चारण करना शुरू करते हैं और जपते समय किसी पदार्थ के लिए प्रेम या घृणा का भाव

उठता है, जबकि आपका विचार यह था कि ये भाव आपके प्रगति-मार्ग में प्रवेश तक न करें और न बाधा डालें। अब आपको ऐसे अवांछित भाव के साथ क्या करना चाहिए? इसे निर्मूल कर दीजिए, जड़ से उखाड़कर फेंक दीजिए, अपने मन से सदा के लिए इसका उन्मूलन कर दीजिए। किस प्रकार से? ये भाव केवल ज्ञान से निर्मूल किये जा सकते हैं। जब घृणा का भाव मन में प्रवेश करे तो उसे ले लीजिए, उसकी उपलब्धि कीजिए, उसे खंड-खंड काटकर उसकी परीक्षा कीजिए और सच्चा कारण ढूँढ़िए। आप सदा देखेंगे कि उस घृणा के भाव का सच्चा कारण अज्ञान, दुर्बलता, देह को 'मैं' का रूप दे देना, 'मैं यह देह हूँ' की कल्पना आदि है। इस प्रकार का अज्ञान सदा मन की एकाग्रता में अनधिकार प्रवेश करने वाले विचारों का कारण होता है। राम कहता है कि ऐसे मामलों में इन विचारों का विश्लेषण कीजिए, और ज्ञान के द्वारा उन्हें निर्मूल कीजिए और ओं का जप करते रहिए। ओं का जप करते हुए, भविष्य में इन विचारों को रोकने की दृढ़ प्रतिज्ञा और अटल निश्चय कीजिए, भविष्य में इन स्वार्थपूर्ण अभिप्रायों को पराजित करने की प्रतिज्ञा दृढ़ता से कीजिए। ये अटल प्रतिज्ञाएँ एक बार की जाने पर वे आपका चरित्र निर्माण करेंगी, और आपकी नैतिक दृष्टि को बलवान बनायेंगी। सांसारिक कार्यों में संलग्न सांसारिक जीवन-यात्रा में आपकी तात्विक शक्ति आपको बहुत सहायता देगी।

मान लीजिए कि उस विचार को दूर करने में, उस विचार को परास्त करने में और ओं जपकर बल बढ़ाने में आधा घंटा खर्च हो गया और मान लीजिए उस विचार या भावना को जीतने में ही सारा समय व्यतीत हो गया और अति-चेतनता की अवस्था में पहुँचने के लिए कोई समय न रहा तो कोई चिन्ता की बात नहीं। यदि उस दिन अति-चेतन अवस्था की प्राप्ति न हो तो कोई परवाह

नहीं, किसी दूसरे दिन वह प्राप्त हो जायगी। यदि उस दिन एक निकृष्टविचार पर विजय प्राप्त हुई है तो आपका चरित्रबल बढ़ गया यदि है। इस जीवन में आप एक प्रलोभन से अपने को विरत कर सकें या उसका दमन कर सकें तो भविष्य के लिए आपको सुन्दर चरित्र मिल गया और आपके लिए इतना ही पर्याप्त है। इस प्रकार आपके चरित्र का निर्माण होता जायगा और इसी प्रकार आपकी आध्यात्मिक शक्ति दिन बदिन बढ़ती जायगी। आपके मन की एकाग्रता आवे चाहे न आवे। किसी-किसी समय आत्मोपलब्धि या सत्य के लिए अति अभिलाषा करना भी एक दोष बन जाता है, उस अवस्था की प्राप्ति में यह विघ्न के रूप में आ जाता है।

कुछ लोग कहते हैं, "महाशय! हम चित्त को एकाग्र करने की कोई विधि, आत्मोपलब्धि का कोई उपाय चाहते हैं। न हम व्याख्यान चाहते हैं और न पढ़ने की सामग्री ही चाहते हैं। ये लोग भ्रम में हैं। कौन-सा विघ्न आपके मार्ग को रोक रहा है? इस परमात्मा, इस चैतन्यात्मा या इस आत्मोपलब्धि से आपको अलग रखनेवाली वस्तु कौन-सी है? यह है आपका अज्ञान। और यह अज्ञान क्या है? सन्देह, शंकाएँ, सांसारिक विचार, मिथ्या कल्पनाएँ ये ही अज्ञान हैं। मिथ्या कल्पनाएँ, सांसारिक विचार, बुरी प्रवृत्तियाँ अज्ञान हैं। ये ही वे बादल हैं जो आपकी प्रगति को रोकते हैं। आस्था का अभाव भी अज्ञान है। जिसे ईश्वर से अपनी अभिन्नता में कोई सन्देह नहीं है वह सदा समाधिप्राप्त है। आपके सन्देह और शंकाएँ ही आपके मन को मार्गभ्रष्ट करती हैं। आपके संशय ही आपको इधर-उधर भटका देते हैं। एक व्यक्ति जो इस प्रकार का साहित्य पढ़ रहा है, जो इन विषयों में अनुसन्धान करता है, जो अध्ययन करता है, जो धीरे-धीरे अपने सब सन्देहों पर विजय पा रहा है और अपनी सारी शंकाओं को परास्त कर रहा है, वह व्यक्ति

चलते-फिरते, खाते-पीते या बात-चीत करते समय भी वैसी ही एकाग्रता में है जैसी एकाग्र अवस्था में आँखें बन्दकर चुपचाप ध्यान लगानेवाला कोई सामान्य व्यक्ति होता है। अधिकांश मनुष्यों में असाधारण अवस्था में जितनी शक्ति होती है उससे अधिक उस शक्ति मननशील संशयरहित व्यक्ति में सामान्य अवस्था में रहती है।

ओं ओं ओं

आत्मोपलब्धि के मार्ग में कुछ बाधाएँ

[युक्तराष्ट्र अमरीका में दिया हुआ व्याख्यान]

इन सब रूपों में मेरे ही आत्मस्वरूप,

आज राम आत्मोपलब्धि के मार्ग में कुछ बाधाओं का विषय लेगा।

प्रश्न—क्या आत्मस्वरूप, कर्म का कर्त्ता निर्लिप्त रहता है? शरीरों के किसी कार्य के बारे में क्या आत्मा सचेत रहता है?

उत्तर—नहीं। शुद्ध आत्मस्वरूप जो कि प्रकृत आत्मा है, वेदान्त के अनुसार न तो कर्म का कर्त्ता होता है और न भोक्ता। यदि यह कर्त्ता या भोक्ता में कोई भी होता तो निर्लिप्त नहीं रह सकता था। आपके अन्दर जो कर्त्ता या कारक है वह तो दृष्टि में आनेवाला मिथ्यात्मा है, वास्तविक आत्मा नहीं और यह बाह्य आत्मा या मिथ्यात्मा अपना अस्तित्व और अपनी सारी शक्तियाँ उस वास्तविक आत्मा से ही प्राप्त करता है।

यह बड़ा ही पेचीदा प्रश्न है और यदि हम प्रश्न के विस्तार पर ध्यान देने लगें तो करीब तीन घंटे लग जायेंगे। अस्तु, राम केवल एक उदाहरण देकर इसे समाप्त करेगा।

मान लीजिए कि भ्रमवश आपने कोने में एक साँप देखा। आपकी दृष्टि में तो सर्प दिखाई देता है, किन्तु जब आप उस सर्प को छूने लगते हैं तो वह सर्प नहीं रह जाता, रस्सी का एक टुकड़ा बन जाता है। इस प्रकार सर्प जो रस्सी में स्थित था, वास्तव में वह था ही नहीं। बाह्य दृष्टि से रस्सी सर्प का आधार थी, सर्प को समर्थन किये हुए थी पर वास्तव में न तो रस्सी ने सर्प को कोई

आश्रय दिया और न उसका समर्थन किया। रस्सी ने सर्प को कोई स्थान नहीं दिया।

इस प्रकार भ्रान्ति या माया के स्थितिविन्दु से, रस्सी, केवल रस्सी ही सर्प का आश्रय तथा आधार थी, किन्तु वास्तव में रस्सी सर्प कभी नहीं हुई, बराबर रस्सी ही बनी रही और सर्प का अस्तित्व ही नहीं था। इसी प्रकार बुद्धिजीवी और तार्किक व्यक्ति, जो कि अब भी भ्रम में हैं, उसके स्थितिविन्दु या दृष्टिकोण से, सत्यस्वरूप आत्मा या ईश्वर ही आपके सारे कर्मों को, आपके जीवन को, आपकी शक्ति और उद्यम को सहारा दिये हुए है, बल दिये हुए है; आपकी धारणा या सांसारिक भ्रान्ति के दृष्टिकोण से आत्मा ही प्रत्येक वस्तु को सहारा या आश्रय देता है। किन्तु यथार्थ और सत्य के दृष्टिकोण से, आत्मा या सत्य आत्मस्वरूप कदापि किसी कार्य, किसी व्यक्ति या किसी वस्तु का आधार, आश्रय या सहारा नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि यहाँ दो भिन्न दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार आत्मा वास्तविक आत्मा ही सब कुछ करता है, दूसरी दृष्टि से आत्मा नितान्त स्वतंत्र है और कदापि कुछ नहीं करता।

अब हम आत्मोपलब्धि के मार्ग में कुछ बाधाओं पर विचार करेंगे। इस विषय पर हम कई दिन से आलोचना कर रहे हैं और आज राम आपके सामने, आत्मोपलब्धि के पथ पर जो एक अति भयानक रोड़ा आता है, उसको रखेगा। यह रोड़ा है आलोचना—आन्तरिक तथा वाह्य।

हम पहले वाह्य आलोचना को लेते हैं। किसी न किसी प्रकार से अधिकांश लोगों का तीव्र स्वभाव है दूसरों की आलोचना करना; और जब तक आप दूसरों में दोष निकालते रहेंगे, या दूसरों को परखने या जाँचने की आदत बनाये रखेंगे या दूसरों के अवगुण-

मात्र ही देखते रहेंगे, तब तक आपके लिये ईश्वरोपलब्धि या ईश्वर का साक्षात् करना अत्यन्त कठिन है।

एक बालक है। उसके अन्दर कोई चोर नहीं है और यदि उस बालक की उपस्थिति में कोई चोर प्रवेश करे तो वह सब कुछ उठा ले जा सकता है, क्योंकि उस बच्चे के अन्दर कोई चोर नहीं है और न तो उस बच्चे के लिए बाहर भी कोई चोर है। इस प्रकार जब आप बाहर के चोर को पकड़ना चाहते हैं उससे पहले ही आप चोर को अपने अन्दर बिठा लेते हैं।

जब आप दूसरों में दोष या त्रुटियाँ निकालने का प्रयास करते हैं तो आप मानो अपनी ओर दोष और त्रुटियों को निमंत्रण दे रहे हैं। जब आप किसी दूसरे प्राणी को गोली मारने के लिए बन्दूक चलाते हैं तो बन्दूक पलटकर आपको धक्का मारेगी। बन्दूक आपके विरुद्ध प्रत्याघात करेगी। जब आप किसी की निन्दा करते हैं या उसका कोई दोष निकालते हैं तो उनमें से कुछ आप में भी आ जायँगे, यही विधान है। 'दूसरों में खोट न निकालना', यह इतना दूसरों को दोष से नहीं बचाता जितना कि स्वयं अपने को। आपको इन दूसरों में दोष-गुण निकालनेवाली छिद्रान्वेषी मनोवृत्ति से अवश्य ऊपर उठना चाहिए।

अपने पड़ोसी की आँखों में धूल-कण देख लेना अपनी आँखों में तिनके को देख लेने से अधिक आसान है।

सदा याद रखिए कि ईर्ष्या, द्वेष, छिद्रान्वेषण तथा खोट निकालनेवाले विचार, या ऐसे विचार जिनमें तनिक भी द्वेष या घृणा की गंध आती हो, इनमें लिप्त होने से आप स्वयं उन विचारों को अपने पास बुलाते हैं। जब कभी आप अपने भाई की आँखों में किरकिरी ढूँढ़ने जा रहे हों, समझ लीजिए कि आप अपनी ही आँखों में तिनका ढाले ले रहे हैं।

अपने ही ऊपर रहम रखने के लिए आपको चाहिए कि आप दूसरों की निन्दा करना और उनमें दोष निकालना छोड़ दें। याद रखिए कि उस व्यक्ति के लिए वह कार्य शायद लाभदायक और उत्तम हो, किन्तु शायद वही कार्य आपके लिए हानिकारक हो। वह कार्य जिसे आप अन्य व्यक्ति में देखकर बुरा कहते हैं, आप स्वयं त्याग दें। किन्तु आपको उस कार्य के लिए उस व्यक्त की निन्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

क्या आप जानते हैं कि यह अलोचना करने और दोष-गुण निकालनेवाला स्वभाव विश्वव्यापी क्यों है? इसके लिए भी कुछ मज़बूत आधार हैं।

क्यों लोग दूसरों की निन्दा करते हैं और वे कौन-से लोग हैं जो सबसे ज्यादा निन्दा करते हैं? दुर्बल और अज्ञानी ही अधिकतर दूसरों की निन्दा किया करते हैं। इसका कारण यह है कि समालोचना या निन्दा करने के स्वभाव द्वारा वे स्वयं अपनी रक्षा करना चाहते हैं। यह आत्म-रक्षा तथा आत्मस्थिति का सिद्धान्त है जो कि दूसरों की आलोचना तथा निन्दा के रूप में प्रकट होता है।

एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा काम करते देखता है कि जिसे यदि वह स्वयं करता तो वह कार्य उसे हानि पहुँचाता। इसलिए वह व्यक्ति उस कार्य से घृणा करने लगता है। उसके लिए उस कार्य से घृणा करना स्वाभाविक है क्योंकि यदि वह घृणा न करे तो वह उस कार्य से अपने को विरत नहीं रख सकता और न उसकी अपवित्रता या हानि से अपने को वह बचा सकता है। उस कार्य की छूत लगने की संभावना से अथवा अपने पड़ोसी की इस छूत से अपने को बचाने के लिए, वह व्यक्ति अपने पड़ोसी की निन्दा करने लग जाता है, और इस प्रकार इस निन्दा के द्वारा वह अपने को सुरक्षित रखता है। उसका विचार है कि जब तक

वह अपने भाइयों की निन्दा करता रहेगा तब तक वह उस दोष से स्वयं मुक्त रहेगा। किन्तु इससे आलोचना, छिद्रान्वेषण या निन्दा करने का उज्ज्वल पक्ष ही सामने आया। और इससे यह सिद्ध होता है कि आलोचना, हमारी आध्यात्मिक उन्नति के लिये किन्हीं अवस्थाओं में अवश्यमेव आवश्यक है।

आध्यात्मिक प्रगति के लिये कभी-कभी अपनाये गये इस उपाय का दूसरा अर्थात् दोषयुक्त पक्ष यह है कि दुर्बल मनुष्य यह गलती कर बैठते हैं कि किसी व्यक्ति के दोषयुक्त कार्यों के कारण वे उस व्यक्ति से ही घृणा करने लग जाते हैं। आप भले ही इन भूलों की निन्दा करें, इन कार्यों तथा वाक्यों की आलोचना करें, अपने पड़ोसी की दुराचारी प्रवृत्ति की भले ही आप निन्दा करें, किंतु आपको उस व्यक्ति से घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। एक पुरानी कहावत है, "पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।"

किंतु क्या व्यावहारिक रूप में यह सम्भव है कि पाप से घृणा की जाय और पापी से प्रेम? क्या यह व्यावहारिक है? अवश्य! यह बहुत ही व्यावहारिक है। हो सकता है कि उन व्यक्तियों के लए यह व्यावहारिक न हो जिन्होंने उचित ढंग से समस्या का समाधान न किया हो। इसके लिए केवल किंचित् ज्ञान की आवश्यकता है।

तनिक इस बात पर ध्यान दीजिए कि अन्य व्यक्ति के जिस कार्य से आप घृणा करते हैं वही कार्य यदि आप स्वयं किये होते तो सम्भव है वह आपके मार्ग में रोड़ा अटकाता या आपकी प्रगति को रोक देता किन्तु दूसरे व्यक्ति द्वारा किया वह कार्य उसके लिये उचित हो सकता है। आप कह सकते हैं कि पाप तो सदा पाप ही है। यह भेद कहाँ से आ गया?

यदि आप कुछ विशेष कार्यों को पापपूर्ण और कुछ अन्य विशेष

कार्यों को पुण्यमय कहने लगें तो यह आपकी भूल होगी। कोई भी कार्य स्वत: ही पाप या पुण्य नहीं हो सकता, ठीक जिस प्रकार शून्य का स्वत: कोई मूल्य नहीं होता। किन्तु इस शून्य को जब आप किसी दाशमिक बिन्दु के दाहिनी ओर रख देते हैं तो उस अंक का मूल्य घट जाता है और यदि इसी शून्य को दाशमिक बिन्दु की बायीं ओर रख दीजिए तो अंक के मूल्य में वृद्धि हो जाती है। किन्तु स्वयं शून्य या सिफर का कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार कोई भी कार्य स्वयं पाप या पुण्य नहीं है।

पाप से घृणा और पापी से प्रेम करने में आपको कठिनाई इस कारण से होती है कि पाप के अर्थ को आप ठीक तरह से नहीं समझते हैं। जिस प्रकार लोग, जब अपने शरीर और धन को बहुत मानने लगते हैं, तो ईश्वर को भी साकार मानने लग जाते हैं। जिस प्रकार लोग मूर्त्ति और प्रतिमाओं का निर्माण करने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार किसी विशेष कार्य को बढ़ा-चढ़ाकर देखना, पूजा करना लोगों की अज्ञान-प्रवृत्तियों का फल है। और इस प्रकार से वे किसी कार्य को निकृष्ट कहने लगते हैं तो किसी कार्य को उत्कृष्ट। स्मरण रखिए कि धर्म हृदय की वस्तु है, गुण भी हृदय की वस्तु है और दोष भी। पाप और पुण्य दोनो का सम्बन्ध आपकी स्थिति तथा मानसिक अवस्था के साथ है।

शरीर नहीं, मन ही का सुधार करना है। मन को ही पुनर्जीवित किया जाता है। आपका जन्म आत्मा से होना है। जिस प्रकार 'तू मिट्टी से बना है और मिट्टी में ही मिल जायगा' यह आत्मा के सम्बन्ध में नहीं कहा गया है, इसी प्रकार 'आपको आत्मा से ही पुन: जन्म लेना होगा, तुम्हें जन्मान्तर ग्रहण करना होगा' यह वाक्य भी शरीर के सम्बन्ध में नहीं कहा गया है।

उदाहरण के लिए, यदि आपके घर में कोई बच्चा माँ के स्तनों

से दूध पीता है तो क्या आपके लिए भी इस बूढ़ी उम्र में उस माँ के स्तनों से दूध पीना उचित होगा ? नहीं, एक सयाने व्यक्ति, एक बलवान युवक को घर में माँ का दूध पीकर नहीं रहना चाहिए। वह उस दूध पर जीवित नहीं रह सकता किन्तु शिशु अपना निर्वाह उसी से कर लेता है। यहाँ आप देख रहे हैं कि उस दूध पर निर्वाह करना उस शिशु के लिए उचित है जब कि आपके लिए वह अनुचित है। आपके लिए यह करना पाप होगा। परिपक्व आयु में माँ के दूध पर निर्वाह करना पाप है किन्तु शिशु के लिए यह कार्य बिल्कुल पाप नहीं है। शिशु वह करता है जो आपके लिए अनुचित है, किन्तु क्या इससे आप उस शिशु से घृणा करने लगते हैं ? यदि आप यह कार्य करें तो यह पाप होगा और इसलिए आप पाप से घृणा करते हैं किन्तु पाप करनेवाले से नहीं, अर्थात् वही कार्य करनेवाले बच्चे से आप घृणा नहीं करते।

शिशु के लिए यह कार्य पाप नहीं है और आपके लिए यह पाप है और फिर आप उस कार्य से घृणा करते हैं जो आपके लिए पाप है और आप शिशु से प्रेम करते हैं। वह विशेष कार्य आपके दृष्टिकोण से पाप है किंतु शिशु के दृष्टिकोण से पाप नहीं है। इसलिए याद रखिए कि संसार के सारे पापों का यही हाल है। जिन कार्यों को यदि आप स्वयं करें और वह दोष एवं पाप बन जाते हों, तो उन्हें आप घोर पाप समझ लें। संसार के ऐसे कामों से घृणा कीजिए किन्तु उन कामों के करनेवालों से घृणा मत कीजिए। उनके सम्बन्ध में अन्यायपूर्ण विचार करने का आपको कोई अधिकार नहीं है।

शेख सादी फारसी के एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद इमर्सन ने किया है। वे लिखते हैं कि अपने बाल्यकाल में एक बार वे मुहम्मद की पवित्र

भूमि मक्का जा रहे थे। प्रथा यह थी कि आधी रात को सब लोग उठकर बैठ जायँ और प्रार्थना करने लगें। एक रात को शेख सादी और उनके पिता उठ बैठे और प्रार्थना की किन्तु उनके साथियों में से कुछ लोग नहीं उठे। वे सो रहे थे। सादी ने उनकी ओर लक्ष्य करके अपने पिता से शिकायत की, "देखिए, ये लोग कैसे आलसी और निकम्मे हैं। एक ने भी उठकर प्रार्थना नहीं की।" पिता ने बालक सादी को डाँटकर कहा, "ऐ सादी, मेरे प्यारे बच्चे, इन लोगों की निन्दा करने या उनमें खोट निकालने की अपेक्षा तो तुम्हारे लिए यही अच्छा होता कि तुम भी उन्हीं की तरह सोते रहते और प्रार्थना न करते। ईश्वर की प्रार्थना या पूजा न करने की अपेक्षा यह निन्दा करना अधिक भयंकर पाप है।"

यदि आपने कोई महान और उदार कार्य किया हो और आपके साथियों ने वह कार्य नहीं किया है और यदि आप इस महान् कार्य करने के गर्व से फूलकर कुप्पा बन जाते हैं और अपने साथियों की निन्दा तथा अलोचना करते हैं तो क्या इससे आपके उस सद्गुण में कुछ बढ़ोती होती है ? क्या आप ऐसे आचरण के द्वारा ईश्वर के अधिक निकट पहुँच जाते हैं ? नहीं, नहीं, आपने एक प्रकार की बुराई के बदले में दूसरे प्रकार की बुराई को मोल ले लिया है। आपके त्यागे हुए बुरे कर्म उन ताँबे के पैसों के समान हैं जिन्हें आपने चाँदी के रुपयों से बदल लिया है। ये चाँदी के रुपये निन्दा या आलोचना है, दूसरों में दोष निकालने का स्वभाव है। इससे आपकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा, आपमें एक बुराई रह गयी है। शुरू में शायद आपमें सौ बुराइयाँ थीं किन्तु अब भले ही आपमें केवल एक ही बुराई रह गयी, किन्तु यह एक बुराई दूसरी सौ बुराइयों के बराबर है। इसलिए यह आलोचना की मनोवृत्ति आपको सच्चे त्याग के जरा भी निकट नहीं लाती है।

यदि संसार इस समालोचना या छिद्रान्वेषण को बहुत बड़ा पाप नहीं समझता है तो इसमें संसार का दोष है। किन्तु अनुभव यह सिद्ध करता है कि एक व्यक्ति जो कोई गलत काम तो करता है, किन्तु जिसके पास एक प्रेममय हृदय हो, ह व्यक्ति जिसके कृत्य संसार की दृष्टि में पुण्यमय न प्रतीत हों किन्तु जिसकी आत्मा कोमल है, जिसका मन भद्र हो, जो स्वभाव से विनम्र हो और ईश्वर के निकट हो, वह व्यक्ति जो दयालु हो, ऐसा वह व्यक्ति अन्य तत्वज्ञानियों की अपेक्षा स्वर्ग के साम्राज्य के अधिक निकट है।

बायबिल में लिखा है कि फलीस्तिनी (Phillistines) बड़े ही धर्मात्मा होते थे, उनके सब कृत्य धर्मयुक्त होते थे किन्तु उन लोगों में कोमल, दयालु और प्रेमयुक्त भाव नहीं था। इन लोगों में यह निन्दा करने तथा दोष निकालने का स्वभाव था जिससे यह लोग ईसा मसीह के उतना निकट नहीं पहुँच सके जितना कि मेरी मेगडेलीन पहुँच सकी थी, ऐसी मेगडेलीन, जिस पर पत्थर फेंके गये थे, जिसका चरित्र भी अति शुद्ध नहीं था, और न वह निष्क-लंक थी। किन्तु इस मेरी मेगडेलीन में निन्दा करने की तथा दोष निकालने की प्रकृति नहीं थी, उसके अन्दर प्रेम-भाव था और वह सत्य से अधिक निकट थी और इसी कारण, फाहरिसी (Pharisees) लोगों की अपेक्षा, वह स्वर्गीय साम्राज्य के अधिक निकट पहुँच गई थी।

ली हंट द्वारा लिखी हुई एक कविता में यह भाव बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। उस कविता का सारांश यों है —

कोई एक शेख था। उसने स्वप्न में एक बार देखा कि एक देवदूत एक किताब में लोगों का नाम लिख रहा है। शेख ने पूछा, "महाशय, आप क्या कर रहे हैं?" देवदूत ने उत्तर दिया, "मैं इन

लोगों के नाम लिख रहा हूँ जो ईश्वर के अत्यन्त निकटवर्त्ती, उसके सबसे अधिक प्रेमपात्र तथा उसके सबसे बड़े उपासक हैं।" तब शेख ने अपना सिर झुका लिया और उत्साह-शून्य हो गया। उसने कहा, "मैं भी चाहता हूँ कि अन्य लोगों की तरह मैं ईश्वर का उपासक होता, किन्तु न तो मैं कभी प्रार्थना करता हूँ और न कभी देवालय जाता हूँ, इसलिए मैं इस तालिका में स्थान नहीं पा सकता हूँ। मैं स्वर्ग के साम्राज्य में कभी नहीं जा सकूँगा। देवदूत ने कहा, "तब तो सचमुच कोई चारा नहीं है।" तब शेख ने देवदूत से दूसरा एक प्रश्न किया, "क्या आप कभी ऐसे लोगों की भी तालिका या सूची बनाएँगे जो सारे संसार और मनुष्य-मात्र से प्रेम करता है किन्तु ईश्वर से प्रेम नहीं करता ?" उसने फिर कहा, "मेरा नाम मनुष्य के उपासक के रूप में लिख लीजिए।" देवदूत अदृश्य हो गया। शेख ने दूसरी बार स्वप्न देखा तो वह देवदूत वही पुस्तक हाथ में लिये प्रगट हुआ। जब वह देवदूत उस पुस्तक का पृष्ठ पलट रहा था तो शेख ने पूछा, "अब आप क्या कर रहे हैं ?" देवदूत ने उत्तर दिया, "मैंने पुस्तक को फिर से दोहराया है और ईश्वर के उपासकों का नाम क्रम से उनके गुण के अनुसार लिख लिया है।" शेख ने उस पुस्तक को निगाह भर देखने की सम्मति माँगी। उसने विस्मित होकर देखा कि जिस शेख ने अपना नाम मनुष्य के उपासकों में बतलाया था, उसका ही नाम ईश्वर-भक्तों की श्रेणी में सर्व प्रथम है।

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है ? नहीं, यह एक तथ्य है।

यदि आप मनुष्य की उपासना करें या अन्य शब्दों में यदि आप मनुष्य को मनुष्य न सोचकर ईश्वर समझ लें। यदि आप प्रत्येक वस्तु को ईश्वर समझ लें और फिर मनुष्य की उपासना करें तो आप ईश्वर की ही उपासना करते हैं।

यह आलोचना, छिद्रान्वेषण, निन्दा करना या दोष निकालना, ईश्वर की उपासना नहीं है। कुछ अर्पण कर देने से ही ईश्वर की उपासना नहीं होती। बायबिल में लिखा है कि जिस समय कुछ लोगों ने ईसामसीह से कहा कि आपके माता और पिता बाहर आपकी प्रतीक्षा में खड़े हैं, तो ईसामसीह ने उनसे जन-समूह को दिखलाते हुए कहा, "यह देखो, मेरे माता और पिता हैं।"

आप अपना दोष देखने पर अपने से घृणा नहीं करते हैं उसी प्रकार यदि आपको अपने मित्र में कुछ दोष दिखायी पड़ें, तो उन दोषों से स्वयं बचने का प्रयत्न कीजिए, किन्तु मित्रों से घृणा मत कीजिए। वे ईश्वर हैं। उनमें ईश्वरत्व को पहचानिए।

यहाँ एक व्यक्ति है जो सरकारी नौकर है और सरकारी काम करता है। उसके दिमाग में आता है कि वह सारा काम छोड़ दे। बस वह सारा काम छोड़कर राष्ट्रपति के पास जाता और सारा समय उनकी सेवा में लगा देता है। अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। क्या ऐसा व्यक्ति दफ्तर में रखा जायगा ? नहीं। बिल्कुल नहीं। वह निकाल दिया जायगा।

राष्ट्रपति की सेवा के लिए आपको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए था। आपको उन कार्यों की उपासना करना चाहिए था जो राष्ट्र के सेवक के रूप में आपके जिम्मे हैं। इसी प्रकार यदि आपका लक्ष्य मन्दिरों और देवालयों में उपासना करने का है, माला जपने का है तो वह राष्ट्रपति के पास जाने, उनके पैर दबाने और उनके सामने नतशिर खड़े रहने के समान है। किन्तु केवल इससे कोई काम नहीं बनेगा।

ईश्वर-उपासना का श्रेष्ठ उपाय, अपने मित्र में ईश्वरत्व और ईश्वर की उपासना करना है। जब आप इस ढंग से उस दशा में पहुँच जायँ जहाँ आपको अपने मित्र में ईश्वर का बोध होने लगता

है, जहाँ उनकी भूलों तथा अवगुणों से आप क्रोधित नहीं होते हैं, जहाँ उनकी भूलों तथा त्रुटियों को देखकर उनकी ईश्वरता से आप विमुख नहीं होते, जब वह ईश्वरत्व किसी भी तरह से ओझल नहीं होता, तभी आप अपने में ईश्वरत्व की उपलब्धि करने के योग्य होंगे।

संक्षेप में, सारी कठिनाई यही है। हम अपने शत्रुओं में ईश्वरत्व का दर्शन क्यों नहीं करते हैं ? इसलिए कि हम उनमें दोष देखते हैं। लोगों को चाहिए कि वे दोष देखना बन्द कर दें और चारो ओर ईश्वरत्व देखने लगें। प्रत्येक प्राणी में ईश्वरत्व विद्यमान है ऐसा विश्वास कीजिए, प्रत्येक प्राणी में अनन्त स्वरूप का दर्शन कीजिए। बहुधा हम नीरो (Nero)-जैसे लाग देखते हैं जो अपनी युवा अवस्था में तो बड़े धार्मिक और सदाचारी थे किन्तु बाद में बड़े दुष्ट निकले। इँगलैंड का राजा हेनरी पंचम (Henry V) अपनी बाल्यावस्था में वड़ा दुराचारी था, लेकिन बाद में वह वड़ा ही सदाचारी बन गया। इसलिए किसी भो व्यक्ति के चरित्र को एक साँचे में ढालने का प्रयत्न न कीजिए क्योंकि कुछ व्यक्ति जो आज बहुत बुरे हैं, शायद कल बहुत ही अच्छे निकल जायँ। सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) जब बालक था तो बड़ा बेवकूफ था किन्तु बाद में वह एक महान व्यक्ति बन गया था। सर आइजक न्यूटन (Sir Isaac Newton) को हिसाब के सवाल सही हल न करने पर कई बार मार पड़ी थी किन्तु देखिए बाद में वह क्या बन गया ? मेरी मेगडेलीन (Mary Magdalene) अपने प्रारम्भ जीवन में बड़ी दुश्चरित्रा थी किंतु बाद में जब वह ईसामसीह के संस्पर्श में आयी तो वह बड़ी पवित्र नारी बन गयी। वह ईसामसीह की शिष्या बन गयी। सम्भव है कि आज का साधारण पापी थोड़े समय के बाद साधु बन जाय, पवित्रतम बन जाय। याद रखिए कि यदि एक व्यक्ति गलत काम कर रहा है तो आपको उसके विरुद्ध खड़े होने का या उससे घृणा

करने का कोई अधिकार नहीं है। उसमें ईश्वरत्व का दर्शन कीजिए, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक स्थान में ईश्वर का दर्शन कीजिए। यदि कोई व्यक्ति आपके सम्बन्ध में बुरा सोचता है या दूसरे लोग आपमें दोष निकालते हैं तो क्या आप उसका बदला लेंगे? नहीं, नहीं। कदापि नहीं।

जब सुकरात (Socrates) कारागार में थे, उन्हें विष दिये जाने से पूर्व उनके शिष्य उनके चारो ओर इकट्ठे हो गये। उन शिष्यों ने आग्रह किया कि कारागार त्याग दें और भाग निकलें। वे कारारक्षक को रिश्वत देकर उन्हें भगा देना चाहते थे। सुकरात ने उनसे पूछा, "क्या रिश्वत देना और राज्य का कानून तोड़ना न्यायसंगत है?" उन्होंने उत्तर दिया, "कभी नहीं।" फिर सुकरात ने उनसे पूछा, "यदि यह विधान-सम्मत नहीं है तो क्यों मुझसे निकल भागने के लिए कहते हो क्यों मुझसे अवैधानिक कार्य करने को कहते हो?" उन शिष्यों ने उत्तर दिया, "इन लोगों ने स्वयं अनुचित कार्य किया है, उन्होंने स्वयं कानून का प्रयोग उचित ढंग से नहीं किया है और इस कारण आपका निकल भागना अनुचित न होगा।" इस पर सुकरात ने कहा, "क्या तुम चाहते हो कि मैं बदला लूँ। कानून को तोड़ूँ? कानून के विरुद्ध कार्य केवल इसलिये करूँ कि उन लोगों ने कानून तोड़ा है? यदि मैं कानून तोड़ूँ तो वह कार्य कभी भूल को सुधार न सकेगा। यह कार्य कभी आपके इस वक्तव्य के अनुरूप न होगा कि 'नियम की अवज्ञा कभी न्यायसंगत नहीं है।" दो काले मिलकर एक श्वेत नहीं बना देते। यदि अन्य लोग निन्दा या समालोचना करें तो हम क्यों करें? यदि हम भी उसी प्रकार करें जैसा कि अन्य लोग करते हैं तो हम मौलिक गलती को ही बढ़ावा देते हैं और मामला कभी सुधर नहीं पाता।

समालोचना और बुरे विचार आपको किस प्रकार हानि पहुँचाते हैं ? अगर आप उन्हें ग्रहण करते हैं तो वे आपको हानि पहुँचाते हैं। यदि आप उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं तो वे आपको हानि नहीं पहुँचाते हैं। ठीक जिस प्रकार एक व्यक्ति आपको पत्र भेजता है और आप उसे पाते हैं। आपके ऊपर उस पत्र का अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ेगा। किंतु यदि आप उस पत्र को स्वीकार ही न करें, उस पत्र को खोलें हीं नहीं, उसे डाकखाने में ही वापस छोड़ आवें, तो भेजनेवाले को वह पत्र वापस कर दिया जायगा। इसी प्रकार यदि और लोग बुरे विचार भेजते हैं और आप उनको नहीं ग्रहण करते तो वे बुरे विचार लौट जाते हैं। किन्तु इन विचारों के ले लेने तथा स्वीकार कर लेने से सब मामला चौपट हो जाता है। उनकी निन्दा को ग्रहण मत करें। कैसे ? अपने ईश्वरत्व पर डटे रहने से, अपने को केन्द्रीभूत कर रखने से, आत्मा में निवास करने से और ईश्वर की उपलब्धि करने से।

निम्नलिखित कविता ऐसे समय पर लिखी गयी थी जब मन मन नहीं था। इस कविता का सारांश ईश्वर के अस्तित्व का बोध कराता है, ईश्वर को आपको निकट लाता है; जब कि निन्दा की ये दीवारें, छिद्रान्वेषण के ये पर्दे न रहें, आपके शरीर पर इनके कोई आवरण न रहें, दूसरों में आपको दोष न दिखाई दें तब समझिए कि आपको ईश्वर का बोध हुआ।

"हे मेरे प्रियतम, तुम इतने समीप, इतने समीप, मेरे इतने निकटतम हो।" (So close, so close, my darling, close to me)।

प्रियतम का अर्थ यहाँ पर ईश्वर या अनन्त स्वरूप से है।

यह वही है जो केशों को बढ़ाता है। यह वही है जो नाड़ियों में रक्त का संचार करता है। यह वही है जो आपको देखने तथा

बोलने की शक्ति देता है। आपकी वाणी में ईश्वर है, आपकी दृष्टि में ईश्वरत्व है, आपके सुनने की क्रिया में भी वही ईश्वर विद्यमान है। और वह शुद्ध आत्मस्वरूप, वह ईश्वरत्व जिससे आप ओतप्रोत हैं, आपके मित्र, आपके भाई, आपके कुटुम्ब तथा आपके शत्रु में है। जब आप अपनी आँखें उस ईश्वर की ओर से बन्द कर लेते हैं तब शत्रु प्रगट होते हैं। जिस आनन्द की तलाश में आप हैं उसे अपने भीतर अनुभव कीजिए, वह परमानन्द स्वरूप ईश्वर आपके अति निकट है।

आनन्द करो, आनन्द मनाओ। आपकी वासनाओं के पदार्थ आपके जाने या अनजाने, ईश्वर ही को अपना लक्ष्य रखते हैं। क्या सभी वासनाओं और इच्छाओं का उद्देश्य सुख नहीं है और क्या सुख ईश्वर नहीं है? अरे, उपलब्धि कीजिए।

"हे प्रियतम मेरे! इतने समीप इतने निकट हो जाओ
ऊपर, नीचे, सामने, पीछे हर ओर रहो तुम
चारो ओर मेरे, बाहर मेरे, अन्दर भी मेरे,
हाय रे मैं! कितना गहन विशाल और तीव्र हो तुम
शिशु मेरे मेरे, प्रियतम।"

सब बन्धन छिन्न-भिन्न हो गये, सब सम्बन्ध टूट गये, 'मैं-मैं' और 'तू-तू' के विचार सब पीछे रह गये, सब सांसारिक सम्पर्क पृष्ठभूमि में रह गये।

ईश्वरत्व या सत्य इतना सुस्पष्ट है, ईश्वरोपलब्धि इस स्तर की है कि सारे स्वार्थी सम्बन्ध टूट-बिखर गये, यही आत्मोपलब्धि है। जब तक ये बन्धन ही आपके लिए सब कुछ हैं, तब तक आत्मोपलब्धि सम्भव नहीं है। यही विधान है। ईसामसीह के शब्दों में बड़ा अद्भुत सत्य है, "जो कुछ तेरे पास है

सब बेच दे, गरीबों को दे-दे और मेरे पीछे चल।" किन्तु लोग डरते हैं।

अरी आधुनिक सभ्यता! तुम्हें ईसा के कथन और कृतियों में सत्य को पहचानना और उपलब्धि करना है। यहाँ वेदान्त तुमको कड़े शब्दों में कह रहा है कि तुम ईश्वर और कुबेर (धन-देवता) दोनो की सेवा एकसाथ नहीं कर सकते। आत्मोपलब्धि के क्षण वे होते हैं जब सारे सांसारिक सम्बन्ध, सांसारिक सम्पर्क, सांसारिक नाते, सांसारिक सम्पत्ति, सांसारिक वासनाएँ और सांसारिक आवश्यकताएँ गलकर ईश्वर में, सत्य में परिणत हो जाती हैं।

मेरा बच्चा, प्रियतम मेरा, पिता भ्राता व भग्नी
मेरे पति, पत्नी मेरी, शत्रु मित्र व जननी
ऐ मधुर मेरे आत्मस्वरूप, मेरी साँस दिन व रात
मेरा उल्लास, मेरा गुण व मेरा अपराध
प्रेम के हैं उज्ज्वल वस्त्र बदलते रंग-बिरंग।
कितने मनमोहक दीखते हैं ऊषावेला के रंग।
ऐ सत्य, ओ ईश्वरत्व, ऐ ईश्वर, मैं निर्बन्ध।
कोई नहीं है ग्रन्थि मेरी, तुझ ही से सम्बन्ध।

मैं कभी डगमगाता नहीं हूँ। यदि मैं लापरवाह होता हूँ तो केवल अपने प्रिय को खिझाने के लिए, क्योंकि मुझे तो केवल तुम को ही परेशान करना है।

"ओ घर, मधुर घर, मेरा पलँग, मेरा सहारा।" अपनी आत्मा को इस कल्पना से भर दीजिए कि ईश्वरत्व ही आपका पलँग है जिस पर आप लेटते हैं।

यह अनुभव कीजिए कि आप ईश्वर के ऊपर ही लेटते हैं।

ठहरो जरा, देखें तनिक खरीदा क्या है मैंने !
अहा, मैं हूँ सर्वशक्तिमान, भूल गया था इसे।

मेरी खरीदी हुई वस्तु अर्थात् 'मैं हूँ' यह मेरा आत्मस्वरूप है। और जो तुमने खरीदा है वह भी वही है जो तुम्हारा सर्वदा का अनन्त स्वरूप है।

चौंधिआने वाली ज्योति, मेरा सूर्य-रथ
ईश्वरत्व का सारात्सार, दृष्टिदायक है।

ओं ! ओं ! ओं !



वेदान्त का नीर-क्षीर विवेक

[५ मार्च १९०३ ई० को सैन-फ्रान्सिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

देवियों तथा सज्जनों के रूप में मेरे ही आत्मस्वरूप,

ओल्ड फेलोज हाल (Old Fellows' Hall) में व्याख्यान देने के बाद राम से एक प्रश्न किया गया था। उपनिषद की इन पंक्तियों का पाठ करने से उस प्रश्न का उत्तर देना हो जायगा।

प्रश्न था, "आप त्याग, संन्यास के बारे में उपदेश क्यों देते हैं और वासनाओं का त्याग और सांसारिक सम्बन्धों को अलग फेंक देने के बारे में बातें क्यों करते हैं ? वेदान्त चाहता है कि हम सारे संसार से अपना नाता तुड़ा लें और सारे संसार के प्रति हम अपने प्रेम का दमन करें। हमारे हृदयों में मानवता के प्रति जितना प्रेम है उसे यह (वेदान्त) पीस डालना चाहता है, नीरस कर देना चाहता है।"

उपनिषद— "जब कोई व्यक्ति परमानन्द प्राप्त कर लेता है या अपने सच्चे आत्मस्वरूप की उपलब्धि कर लेता है तब उसके सारे कर्त्तव्य उत्तम हो जाते हैं और उसमें से भलाई स्वतः ही प्रवाहित होने लगती है। यही विधान है। जो व्यक्ति परमानन्द प्राप्त नहीं करता वह मानवता को भलाई नहीं पहुँचा सकता। यदि आप बहुत दरिद्र हैं, यदि आपके पास भोजन नहीं है और स्वयं भूखे हैं तो दूसरों की भूख आप कैसे मिटा सकेंगे ?"

छात्र—महाशय ! मैं यह समझना चाहता हूँ कि यह परमानन्द क्या है ?

उपदेशक—अनन्त ही परमानन्द है। किसी भी सान्त वस्तु में परमानन्द नहीं है। जब तक आप परिमित हैं, आपके लिए परमानन्द नहीं है, कोई सुख नहीं है। अनन्त ही परमानन्द है। केवल अनन्त ही परमानन्द है।

यह अनन्त! हम इसे कैसे समझें? इन शब्दों पर कोई टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु राम चाहता है कि आप इन शब्दों पर ध्यान दें, इन पर विचार करें और मन में उन्हें ठहरा लें और एक समय आयेगा जब आप इन शब्दों का प्रयोग करेंगे, "अनन्त ही परमानन्द है, परिमित एवं सान्त में कोई परमानन्द नहीं है।" और यह अनन्त क्या है, आप अवश्य समझ लें।

अंग्रेजी भाषा में एक शब्द है Whole (होल) अर्थात् सम्पूर्ण, समग्र, सब। "आर यू होल" या 'क्या तुम पूर्ण हो' का अर्थ है, "क्या तुम स्वस्थ हो, शक्तिशाली हो।" बड़ा ही सुन्दर शब्द है यह। जब तक आप अपने को असम्पूर्ण समझेंगे तब तक आप अपने को कुछ क्षुद्र और परिमित समझेंगे, जैसे साढ़े तीन हाथ लम्बा और पौने दो मन वज़न का शरीर, ऐसा समझेंगे। जब तक आप अपने को रक्त और मांस के रूप में सोचेंगे, जब तक आप सीमित हैं, तब तक आप क्षीण हैं, छिन्न हैं, विभाजित हैं; आप सम्पूर्ण नहीं हैं, आप केवल एक परिमित भग्नांश हैं और सम्पूर्ण नहीं हैं, स्वस्थ नहीं हैं, शक्तिशाली नहीं हैं। आप निश्चल हो रहे हैं। यदि आप समुद्र से थोड़ा-सा जल अलग कर लें तो वह सड़ जायगा, निश्चल होकर वह गन्दा हो जायगा। इसी प्रकार मनुष्य, साधु या सन्त या अन्य कोई, जो अपने को परिमित प्राणी समझेगा, जो अपने को काल और क्षेत्र में सीमित देखकर परिमित प्राणी समझेगा, जो अपने को क्षुद्र क्षेत्र में आबद्ध समझेगा, वह न तो स्वस्थ है, न सम्पूर्ण है और न सुखी है। सुख पर वह बिल्कुल

अधिकार नहीं जता सकता। उसी क्षण जब आपकी दृष्टि सीमित न हो, उसी क्षण जब आप अपनी सान्त चेतना को दूर हटा देते हैं और बोध करते हैं कि आप ही सब हैं, कि आप ही समग्र संसार हैं, कि आप ही अनन्त-स्वरूप हैं। जब आप यह उपलब्ध कर लेते हैं, तब आप सम्पूर्ण बन जाते हैं और शारीरिक रोग, दुःख, दुर्दशा, उद्वेग ये सब तितर-बितर हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं।

सारे आरोग्य, आकर्षण और मोहन-विद्या का यही भेद है। सम्पूर्ण बनिए। पूर्ण आप हैं। यही सत्य है। सत्य में निवास कीजिए। यह उपलब्धि कीजिए कि आप सम्पूर्ण हैं, आप सर्वशक्तिमान हैं, आप ईश्वर हैं।

छात्र—यह अनन्तता या अपारता क्या है?

उपदेशक—प्रतिबन्ध या सीमाबद्धता तीन प्रकार की हैं—काल की सीमाबद्धता, क्षेत्र की सीमाबद्धता और कार्यकारण की सीमाबद्धता। सम्पूर्ण होने का अर्थ है आत्मस्वरूप की उपलब्धि करना, समस्त काल में व्याप्त हो जाना, समस्त काल का अतिक्रमण कर जाना, सारे क्षेत्र को पार कर जाना और सारे व्यक्तित्वों को पार कर जाना। जब एक व्यक्ति कुछ और नहीं देख पाता, कुछ और सुन नहीं पाता, कुछ और समझ नहीं पाता तो वह मूर्त्तिमान अनन्तता है, क्योंकि जब तक आपके अतिरिक्त भी कुछ है तब तक आप परिमित और सीमित हैं, आप अनन्त नहीं हैं।

जहाँ लोग अन्य कुछ देख, सुन या समझ लेते हैं वहाँ परिमिति विद्यमान है। आत्माओं का दर्शन और श्रवण, स्वर्गीय घंटियों की ध्वनि सुनना या जिसे दिव्य दृष्टि रखना कहते हैं, ये सब परिमिति हैं। आप आत्मोपलब्धि के मार्ग पर हैं, किन्तु आप अन्तिम लक्ष्य तक अभी नहीं पहुँच सके हैं। वह अन्तिम गन्तव्य-स्थान वह

है जहाँ कोई अन्य कुछ नहीं देख पाता, अनन्तता के सिवाय कुछ और सुन नहीं पाता। अनन्त नित्य है ओर परिमिति अनित्य।

छात्र—महाशय, यह अनन्त कहाँ विराजता है, किस क्षेत्र पर ?

उपदेशक-केवल अपनी ही महानता में, महानता में भी नहीं।

इसका अर्थ यह है कि अनन्त, देश और काल से परे है। तो आप किस तरह से देश और काल की परिधि में अनन्त को ला सकते हैं ? यह पूछना कि अनन्त कहाँ रहता है कुछ इस ढंग का प्रश्न हुआ, "मुझे आधी छटाँक समुद्र की लहरें ला दो।" समुद्र की लहरें मन सेर छटाँक में तौली नहीं जा सकतीं। इसी प्रकार से अनन्त को भी आप कैसे, कब और क्यों से नहीं नाप सकते हैं। यदि ऐसा सम्भव होता तो वह अनन्त न रह जाता।

राम से प्रश्न किया गया था कि वेदान्त, सब वासनाओं औ सम्बन्धों से त्याग और संन्यास की शिक्षा देकर, घृणा की शिक्षा दे रहा है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। वेदान्त के शब्दों पर ध्यान दीजिए, "प्रेम और आसक्ति का त्याग कीजिए।" किन्तु आप कहते हैं, "अरे, यदि हम प्रेम करना ही छोड़ दें, तो चूँकि प्रेम ही ईश्वर है, हम ईश्वर का ही त्याग कर देंगे।" अरे लोगों! इस देश में प्रेम का अर्थ है लालसा, प्रेम का अर्थ है मूर्खता।

भारत में मूर्खता के लिए एक बेहतर शब्द है। लोग कहते हैं, "अरे वह प्रेम में है।" लेकिन यह बिलकुल प्रेम नहीं है, यह तो कोई पैशाचिक वस्तु है। राम को अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सत्य के प्रति अधिक आदर है। आपके सारे व्यक्तिगत सम्बन्ध आपको परिमित बना देते हैं और प्रेमपात्र को भी परिमित बना देते हैं, तब दोनों का पतन होता है— आपका और आपके प्रेमपात्र का। वेदान्त चाहता है कि आप अपनी लालसा, मूर्खता और

आसक्ति त्याग दें किन्तु वेदान्त यह नहीं चाहता कि आप अपना सच्चा प्रेम त्याग दें। आपको उसे नहीं त्यागना पड़ेगा।

एक शिशु का मामला लीजिए। क्या एक शिशु प्रेमिक है ? नहीं, नहीं। शिशु प्रेमिक नहीं, वह तो स्वयं प्रेम-स्वरूप है। इसी प्रकार वेदान्त कहता है, "प्रेमिक मत बनो, स्वयं प्रेम बन जाओ।" लेकिन वह क्या है जो एक शिशु को चुम्बक बना देता है, आकर्षक बना देता है। यह उसका प्रेमिक बनना नहीं, स्वयं प्रेम बन जाना है। शिशु का कोई सम्बन्ध नहीं होता, बन्धन नहीं होता, कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता बल्कि वह शिशु स्वयं प्रेमस्वरूप होता है और इसी से वेदान्त कहता है, "स्वयं प्रेम बन जायँ और तब आप आकर्षण-केन्द्र बन जाते हैं, सम्पूर्ण बन जाते हैं।"

लोग अपने को स्वस्थ रखने और दूसरों को रोगशून्य करने की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, लेकिन उन सभी स्वार्थमय पद्धतियों और अभिप्रायों को, जो आपको परिमित रखते हैं, कृपया आप त्याग दीजिए। प्रत्येक वासना ही प्रेम है, सभी वासनाएँ व्यक्तिगत प्रेम हैं, सभी वासनाएँ बन्धन हैं। इन्हें दूर फेंकिए और आप स्वयं शुद्धात्मा बन जायँगे। यदि आपमें शुद्धता आ जाय तो आपका शरीर स्वस्थ होकर रहेगा। यदि आप वेदान्तोक्त इस विशुद्धता की उपलब्धि कर लें तो आपकी बुद्धि निर्दोष बन जायगी। वेदान्त द्वारा पुनः-पुनः प्रचारित यही विशुद्धता सच्चा और वास्तविक त्याग है।

इस विशुद्धता को प्राप्त करें। क्या एक शिशु विशुद्ध नहीं ? वह प्रत्येक वस्तु से अनासक्त है। उस नन्हें अत्याचारी की ओर ध्यान दीजिए। वह सर्वश्रेष्ठ बलवानों के कन्धों पर बैठता और सम्मान-प्राप्त शिरों के केशों को खींचता है। वह कितना शक्तिशाली चुम्बक है ? क्या कारण है ? विशुद्धता। यही विशुद्धता

शिशु को चुम्बक बनाती है और यही उसे सुन्दर भी बनाती है। ऐसा ही वेदान्त कहता है, "इस त्याग की उपलब्धि कर लीजिए और बस आप स्वयं प्रेमस्वरूप हो जायेंगे और उस अवस्था में, सारी मानवता के लिए कल्याण आप में से स्वाभाविक और स्वतः स्फूर्त रूप से प्रवाहित होगा।" जब हम संसार का कल्याण करना चाहते हैं तो वह हम केवल तभी कर सकते हैं जब हम स्वयं पूर्णरूप से कल्याणमय बन जायँ। किन्तु ऐसा होना तब तक सम्भव नहीं, जब तक हम में से स्वाभाविक एवं स्वतः स्फूर्तरूप से प्रकाश न विकीर्ण हो, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार एक जलते दीपक से प्रकाश बिखरता रहता है।

ध्यान दें, साँप की आँखें मनमोहक हैं, उनमें आकर्षण-शक्ति है और छोटी-छोटी चिड़ियाँ साँप के मुँह में उड़कर चली जाती हैं। साँप की आँखों में कौन-सी मोहन-शक्ति है? उसकी आँखों में एक निर्लिप्त भाव रहता है, किसी से भी चिपकना-चिमटना नहीं। और आप वह कहावत जानते ही होंगे "साँप-सा बुद्धिमान बनो।" (Be as wise as the serpent.)

आकर्षण का, शक्ति का, स्वास्थ्य का सभी कुछ का सम्पूर्ण भेद इसी में है। यह भी सत्य है कि साँप कभी-कभी दृश्यतः अपने बच्चों को बचाने के लिए लील जाता है या यों कहिए कि साँप अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए उन्हें अपने मुँह में रख लेता है। बल्कि बहुधा साँप अपने बच्चों को खा डालता है। साँप बहुत-से छोटे बच्चों को जन्म देता है और ये सभी साँप अगर जीवित रहें तो संसार निवास-योग्य नहीं रह जायगा। किन्तु प्रकृति ने संसार की सुरक्षा के लिए प्रबन्ध किया है और साँप अपने बच्चों को खा जाता है। साँप एक ऐसा प्राणी है जिसका कोई बन्धन नहीं है, लगाव नहीं है। साँप अपना केंचुल दूर फेंक देता है—उसे अपने

केंचुल से कोई मोह नहीं है। इसी प्रकार राम आपसे कहता है कि यदि आप मानसिक रूप से वैदान्तिक चेतना की उपलब्धि कर लें और शरीर को सचमुच इस प्रकार दूर फेंक दें मानों उसका कभी अस्तित्व न था, यदि आप इसे बगल में फेंक दें और उपलब्धि करें कि "मैं ही ईश्वरत्व हूँ, सर्वरूप हूँ और ईश्वर हूँ", यदि आप यह उपलब्धि कर लें कि आपको बोधेन्द्रियों तथा व्यक्तित्व से कोई लगाव नहीं है, तो आप अनन्त स्वरूप बन जाते हैं। आप एक चुम्बक बन जाते हैं। वेदान्त कहता है, "यदि आप इसकी उपलब्धि कर लें, यदि आप निर्दोष रूप से विशुद्ध बन जायें तो आप एक चुम्बक बन जाते हैं। यह चुम्बक क्या है ? आप प्रेम का घनीभूत सार बन जाते हैं और आप में से स्वतः ही कल्याण प्रवाहित होने लगता है। फिर, आप अपने बन्धनों में क्या इस निर्विवाद तथ्य को नहीं देखते हैं कि आप अपने स्नेह और मनोभावों को गलत समझ रहे हैं ? जब आप कहते हैं कि आप प्रेम में हैं तो उस समय वास्तव में आप घृणा में होते हैं। इसलिए जब वेदान्त कहता है, "प्रेम त्याग दो" तो उसे 'घृणा त्याग दो' के रूप में लेना चाहिए। यह अवश्यमेव समझ लिया जाय। जहाँ पर भी आप केवल किसी एक पदार्थ के बन्धन में पड़ते हैं तो आप सारे संसार से अपने को विलग कर लेते हैं। है न ऐसी बात ? जब तक शिशु ने प्रेम करना नहीं सीखा है, तब तक वह प्रेममय होता है, मानों अकेला ही वह सर्वप्रेम हो। जब शिशु महीना भर की अवस्था में होता है तो कोई भी व्यक्ति उसे उठा ले सकता है, उसे दुलार सकता है। कितना अच्छा है ! शिशु प्रेममय है। किन्तु बाद में एक ऐसा समय आता है जब वह शिशु युवा होने पर स्वयं किसी के प्रेम में पड़ जाता है। तब क्या होता है ? मातापिता बोझ बन जाते हैं, बहन और साथी उसे प्रफुल्ल नहीं कर पाते और पुराने मित्र दूर हट जाते हैं, सारा

संसार ही विलग हो जाता है। युवावस्था को प्राप्त वह शिशु जब अपने व्यापार में लगता है तो वहाँ भी उसे हानि होती है, वह समुद्र-तट पर जाता है किन्तु वह भी दुखदायी लगता है क्योंकि कहीं पर भी उसकी प्रेमिका नहीं है, उसकी प्रेमिका की तुलना में सभी कुछ उसे फीका लगने लगता है। जब आप कहते हैं कि एक मनुष्य प्रेम कर रहा है, तो वह वास्तव में सारे संसार से घृणा कर रहा है। जब आप किसी विशेष पदार्थ से प्रेम कर रहे हैं आप अपने को सारे ससार से पृथक् कर रहे हैं। इसलिए वेदान्त कहता है कि सभी व्यक्तिगत आसक्तियाँ जड़ता की प्रतीक हैं। तो आप आत्महत्या न कीजिए।

वेदान्त कहता है, यहाँ लालसा का एक उदाहरण है और शिशुवाला एक दूसरा उदाहरण है। शिशु तो स्वयं प्रेममय है और प्रथम उदाहरण में अर्थात् उसी शिशु के वयस्क हो जाने पर उत्पन्न प्रेम एक लालसा-मात्र है, केवल लालसा। इसलिए जब वेदान्त कहता है, "अपनी वासनाओं से ऊपर उठिए" तो वह आपको मानवता की ओर आशीर्वाद कर रहा है। वेदान्त आपकी शक्तियों को सर्श्रेवष्ठ रूप से नियोजित कर रहा है और आपका मानवता के साथ मिलन करा रहा है।

क्या यह तथ्य नहीं है कि कल्याणकारी व्यक्तियों का जीवन सदैव पवित्रता से बीता है और वे व्यक्तिगत बन्धनों से मुक्त होकर रहते थे? क्या ईसामसीह ने कभी विवाह किया? नहीं। क्या साधु-सन्तों ने विवाह किया? नहीं। राम विवाह के विरुद्ध कुछ नहीं कह रहा है किन्तु उसके कहने का तात्पर्य यह है कि मन को ईश्वरत्व के साथ अभिन्न किया जाय, आत्मा को सारे संसार से अभिन्न किया जाय। कुछ सन्तों ने विवाह किया—उनके सम्बन्धों की ओर ध्यान दीजिए। उनके मन सम्पूर्ण रूप से बन्धन-

मुक्त थे, सम्पूर्ण रूप से पवित्र थे, भले ही वे परिवार में रहते थे, उनके बाल-बच्चे थे। किन्तु हम वहाँ नहीं रहते हैं जहाँ हमारे शरीर रहते हैं बल्कि हम वहाँ रहते हैं जहाँ हमारे मन रहते हैं। वास्तव में हम वहीं रहते हैं जहाँ हमारे मन रहते हैं। इसी प्रकार हमारे वे सब साधु-सन्त जिन्होंने गोचर रूप से विवाहित जीवन बिताया, उन सबने सम्पूर्ण और समग्र रूप से सत्य का जीवन बिताया, प्रकाशपूर्ण जीवन बिताया। "मैं सर्व हूँ।" इस प्रकार से वेदान्त आपको धीरे-धीरे अपने बन्धनों से मुक्त होने को कहकर, आपको सारे मानव-समाज का कल्याणकारी ही बनाता है।

अमरीकी प्रेस से निकलनेवाला अधिकांश साहित्य आकर्षणवाद, मोहन-विद्या, सम्मोहन, वशीकरण, अलौकिक दृष्टि-शक्ति आदि के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करता है। और इनमें से बहुत-सी किताबें शरीर को बलवान और स्वस्थ बनाये रखने और रोग आराम करने की विभिन्न विधि और पद्धतियों की शिक्षा देती हैं। यह सभी कुछ भव्य है और उद्देश्य भी प्रशंसनीय है। किन्तु कुछ को छोड़कर उन लेखकों में अधिकांश के लेख सत्य के बिल्कुल विपरीत सिद्धान्त के लगते हैं। वह सिद्धान्त, जो कि स्वार्थीपन से रंगा हुआ तथा ओतप्रोत होता है। वह सिद्धान्त, जिसमें अहंभाव किसी के अनुग्रह की आकांक्षा और स्वसमृद्धि की भावना पर अधिक बल दिया गया है। और याद रखिए कि यद्यपि ये लोग काफी प्रयास कर रहे हैं और एक अति महान कार्य भी कर रहे हैं, फिर भी, यदि आप चाहते हों कि उनकी इन दुर्बलताओं को पार कर जायँ, यदि आप वास्तव शक्ति पर प्रभुता प्राप्त करना चाहते हैं और सफलता पाना चाहते हैं, तो आपको पहले तो यह निश्चय समझ लेना चाहिए कि वास्तविक सत्य, प्रत्यक्ष में विरोधाभास से पूर्ण प्रतीत होगा। किसी वस्तु को प्राप्त करने का उपाय यह है

कि आप उस वस्तु के विरोध में हो जाइए। यह ऐसा ही है। क्या किया जाय ? कोई चारा नहीं। राम आपके सामने निर्दोष सत्य रखता है और आप उसे अपने अनुभव के द्वारा पुष्ट कर सकते हैं। आप चाहें तो अन्य सब पद्धतियों का प्रयोग कर सकते हैं, और राम के वाक्यों को उसके उपरान्त ग्रहण कीजिए और जब समय मिले तो उसे उपयोग में लाने का प्रयास कीजिए।

'कोई वस्तु पाने का उपाय उसे खो देना है।' जीवन को प्राप्त करने के लिए पहले अपने जीवन को खोना पड़ेगा। राम देखता है कि अधिकतर लेखक इस सत्य का खण्डन करते हैं। यदि आप सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो चुम्बक बनिए, क्योंकि चुम्बक की ओर लोहे के कण चारो ओर से खिंचे हुए चले आते हैं और वासना भी लोहे के कण के समान है।

जब एक व्यक्ति सफल हो जाता है तो वह चुम्बक बन जाता है। यदि आप एक चुम्बक बनना चाहते हैं तो आपको चुम्बक बनने की सारी पद्धतियों का पालन करना होगा। और वह पद्धति क्या है ?

मान लीजिए, कोई वस्तु है। उसमें धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनो तत्व भरे हुए हैं, दोनो उसमें हैं; किन्तु चुम्बक में वे दोनो तत्व किस ढंग से हैं ? जब वे दोनो मूल तत्व पृथक नहीं होते, तब कोई आकर्षक शक्ति नहीं होती। किन्तु चुम्बक में धनात्मक तत्व, ऋणात्मक तत्व से स्वतंत्र होता है। धनात्मक तत्व एक ओर इकट्ठे हो जाते हैं और ऋणात्मक तत्व दूसरी ओर; तब उसकी शक्ति, मूसा के आसा (डण्डा) की तरह पूर्ण बन जाती है। जिस छड़ी को छुआकर मूसा ने लाल सागर (Read Sea) का पानी विभाजित कर दिया था। इस प्रकार इन तत्वों का विभाजन जरूरी है; किसी वस्तु का आकर्षण प्राप्त तभी होगा जब आपमें चुम्बक की शक्ति उत्पन्न हो जायगी। आपको अगर चुम्बक बनना है तो आपको

अपना चुम्बकीकरण करना होगा। अब, वेदान्त क्या है? त्याग का पाठ पढ़ानेवाला वेदान्त, मूसा के आसा के समान है, मूसा के सुन्दर आसा या छड़ो के समान है, यह दाने से भूसी को अलग करता है—दूधका दूध और पानी का पानी कर देता है। यह उच्चतर स्वभाव से निम्नतर स्वभाव को पृथक करता, विवेक उत्पन्न करता, यह आपमें आपकी पशु-प्रकृति को विलग कर, ईश्वरत्व को प्रकाशित करता है। तनिक गौर करें। आपकी सभी लालसाएँ और आसक्तियाँ केवल इस कारण हैं कि आप अपने को अपरिमित और अनन्त नहीं समझते। अन्यथा अनन्त में कौन-सी वासना हो सकती है? सभी वासनाएँ परिमिति या सीमा का संकेत करती हैं। अनन्त इच्छा नहीं कर सकता, क्योंकि अनन्त के पास अपने सिवा और क्या है? कुछ भी नहीं है। तब अनन्त किस प्रकार से इच्छा करे? कोई सीमित प्राणी ही इच्छा कर सकता है। इस प्रकार आप देखते हैं कि आपकी सारी वासनाएँ और आसक्तियाँ आपके परिमित स्वभाव से उत्पन्न होती हैं, आपके मायापूर्ण मूलतत्वों से जन्म लेती हैं। आपके भीतर जो अनन्त आत्मस्वरूप है वह वासनाओं से परे है। इस प्रकार आप देखते हैं कि आपके भीतर इच्छा करता हुआ जो तत्व है, वह क्षुद्र, मिथ्या अहं आपके भीतर की पशु-प्रकृति है, जो कि निम्नतर प्रकृति की है; और आपके भीतर का अनन्त या ईश्वरत्व इन इच्छाओं से परे है। तो यह वेदान्त करता क्या है? वेदान्त चाहता है कि आप इन दोनो (आत्मा और अहंकार) को पृथक करें। सब कुछ मिलाजुला है। आप अपने को इस क्षुद्र स्वार्थी परिमित अहं के रूप में जानते हैं; और सच्ची आत्मा, राम या ईश्वर के साथ आप, इस मिथ्या, गोचर, बहकानेवाले परिमित स्वभाव को मिला दे रहे हैं

वेदान्त कहता है कि सीजर को सीजर के अनुरूप वस्तुएँ दे

दीजिए और इसी प्रकार राम अर्थात् ईश्वरत्व को वह प्रदान कर दें, जो ईश्वरत्व के लिए है। इन वासनाओं और इस मिथ्या स्वरूप को इनके अपने ही मूल्य पर लेना चाहिए और उन्हें कुछ नहीं के बराबर समझना चाहिए। ईश्वरत्व को अपने में दृढ़ता से स्थापित कीजिए। अपने को ईश्वरों के ईश्वर, प्रभुओं के प्रभु और उस अनन्त एक के रूप में अनुभव कीजिए। तब फिर वासनाएँ कहाँ? आप ही तो सब कुछ हैं। इच्छा वही करता है जो सर्व-कालीन नहीं है। इच्छा वही करेगा जो हर सातवें साल आता है।* सत्य आत्मस्वरूप के लिए कोई वासना नहीं क्योंकि सत्य आत्मस्वरूप तो स्वयं ही सब कुछ है। आप ही के अन्दर सब कुछ है। सभी वस्तुएँ, सभी उल्लास, धन-दौलत, सभी कुछ जिनकी इच्छा मनुष्य कर सकता है मैं, ही हूँ। इसे अनुभव कीजिए और ओं मंत्र का उच्चारण कीजिए और फिर इसे अनुभव करने का प्रयास कीजिए। आप इसकी उपलब्धि अवश्य करें। आपने सदा अपने को यह शरीर माना है, और आप शरीर ही बनकर रह गये। ईश्वरत्व का चिन्तन करें, ईश्वरत्व में निवास करें, तो वासना को स्थान कहाँ है? इस प्रकार वेदान्त आपको एक चुम्बक बना देता है, घनात्मक और ऋणात्मक दोनों छोर अलग हो जाते हैं और आपका चुम्बक करण हो जाता है।

यहाँ पर विशेष महत्वपूर्ण एक बात है। लोग जब यह कहते हैं कि अमुक वक्ता में व्यक्तिगत चुम्बकीय शक्ति है तो वे गलती करते हैं। केवलमात्र इसी चुम्बकीय शक्ति की ही इच्छा आप

---

* विज्ञान का मत है कि भौतिक शरीर में सात वर्ष में एक-एक कण तक बदल जाता है। नई रचना हो जाती है, भले ही हम यही समझते रहें कि हमारा यह शरीर वही शरीर है।

नहीं करते। एक व्यक्ति है जो कि विचारों को आकर्षण करने की चुम्बक शक्ति चाहता है; दूसरा है जो कि धन आकर्षण करने की चुम्बक शक्ति चाहता है; तीसरा है जो व्यक्तिगत सौन्दर्य की चुम्बक शक्ति चाहता है; दूसरे लोग हैं जो अन्य-अन्य प्रकार की चुम्बक शक्ति चाहते हैं। किन्तु इन सभी चुम्बक शक्तियों का गुप्त रहस्य त्याग में है। इन शब्दों पर ध्यान दें—'विशुद्ध त्याग और कुछ नहीं।' निर्दोष स्वास्थ्य की शिक्षा देने के लिए आपको पुस्तक छापकर समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप इन शब्दों को याद रखें और इनके अनुसार कार्य करें तो आप बहुत बड़े चुम्बक हैं। राम अपने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर ये बातें कर रहा है और आप इन्हें आजमा सकते हैं। सर्व प्रकार के ज्ञान को अपनी ओर आकर्षित कर सकें, इसलिये विचारों को आकर्षण करने की चुम्बक शक्ति बनने के निमित्त क्या ईश्वर की प्रार्थना करने से ही काम बन जायगा? "हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मुझे प्रकाश दो। ओ प्रकाशमय, मुझे प्रकाश दो।"—इतनी प्रार्थना करने से ही क्या आपको प्रकाश मिल जायगा? "ओ मुझे प्रकाश दो"—इतना कहने भर से नहीं चलेगा। याद रखिए, जैसा हम सोचते हैं, वैसा ही हम बन जाते हैं। यदि "हमें प्रकाश दो" इस प्रकार आपका विचार हो तो उसका फल क्या होगा? आपके अन्दर इस विचार की उपलब्धि से हो आपकी स्थिति प्रकाश से सदा के लिए दूर हो जायगी। "मुझे प्रकाश दो"—यह विचार भीख माँगने और प्रकाश की याचना करनेवाला विचार है। यह आपको प्रकाश से दूर खड़ा कर देगा और फल यह होगा कि प्रकाश कदापि नहीं आयेगा, वह सदा दूर ही रहेगा।

राम कहता है कि धनी माता-पिता से जन्मे मनुष्य को ध्यान से देखो। आप कहते हैं कि १० करोड़ रुपया उसका जन्मसिद्ध

अधिकार है; किन्तु उसे यह जन्मसिद्ध अधिकार कब प्राप्त होता है? अरे उसे तो अभी बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी है। वह सदा अपनी माता की मृत्यु-कामना करता है जिससे उसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त हो सके। इसलिए जब हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं. और कहते हैं, "हे प्रभु, मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और चूकि मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, हे प्रभु, मुझे यह दो और वह दो। और उसके बाद जब तक ईश्वर की मृत्यु न हो जाय तब तक आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। ईश्वर की कभी मृत्यु नहीं होती और आप भी कभी अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त नहीं करेंगे। अपने चारो ओर से प्रकाश या ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है। प्रार्थना कर, भीख माँग कर, याचना कर, कभी किसी को कोई वस्तु मिली नहीं है।

यह एक अचम्भे से भरा कथन है। लेकिन दर्शन-शास्त्र इसे सिद्ध करता है। शक्ति क्या है? प्रकाश तक के लिए भी वासना त्यागना शक्ति है। जब तक आप प्रकाश के लिए इच्छा करते हैं तब तक वह आपकी पकड़ से कतराकर निकल जाता है। क्या मैं प्रकाश को अपने पास आने को कहूँगा? कहने और माँगने से ही आप प्रकाश को बन्द कर देते हैं। केवल माँगने और जाँचने की क्रिया से ही आप प्रकाश का पथ अवरुद्ध कर देते हैं।

राम एक बहुत मजेदार कहानी सुनायेगा। भारतवर्ष में एक व्यक्ति था जो अपनी प्रेमिका पर विजय पाने के लिए एक मंत्र का जप कर रहा था। लेकिन जिस साधु ने यह मंत्र सिखाया था, उसने कह दिया था कि इसे वह मन ही मन रटे और एक बात से सावधान रहे। यह बात कौन-सी थी? साधु ने उस व्यक्ति से यह कह दिया था कि यह मंत्र जपते समय, किसी बन्दर की कल्पना या रूप उसके मन में न आने पावे। अच्छा, तो वह व्यक्ति मंत्र का जप करते समय बड़ा प्रयास करता रहा कि बन्दर

का विचार उसके मन में न आये। किन्तु जितनी ही बार उसने मंत्र जपने का प्रयत्न किया, बन्दर का विचार बार-बार उसके मन में आया। वह बन्दर का विचार अपने मन से न निकाल सका और सब समय वह उसके सामने बना रहा। वह क्षण भर के लिए भी बगैर बन्दर को सोचे हुए मंत्र का जप न कर सका। वह साधु के पास गया और बोला, "महाशय, यदि आप मुझे बन्दर के बारे में सावधान न कर दिये होते तो शायद मैं मंत्र जपते समय बदंर के बारे में बिल्कुल न सोचता, किन्तु जब आप मुझे उस विचार को बाहर रखने को कहते हैं तो वह मेरे सिर पर सवार है।" इसी प्रकार से अज्ञानता के रोध के प्रयास से ही, अज्ञानता और दुर्बलता को दूर करने के प्रयत्न से ही, आप अज्ञानता और दुर्बलता को वहाँ बुला लेते हैं।

प्रकाश वैसे ही आता है जैसे सूर्य और नक्षत्रों से प्रकाश आता है। वेदान्त कहता है, "प्रकाश के लिए इच्छा करना और माँगना छोड़ दीजिए, प्रकाश के लिए इच्छा से अपने को शुद्ध कीजिए, इसे त्याग दीजिए, छोड़ दीजिए और आप देखेंगे कितना सुख मिलता है! सत्य का अनुभव करें।" प्रकाश आवे, चाहे न आवे। मुझे इस प्रकाश से कोई सरोकार नहीं। "अरे मैं तो इस विश्व-ब्रह्मांड का सूर्य हूँ, इस विश्व का प्रकाश हूँ।"—इसे अनुभव करें। यहाँ आप देखेंगे कि आप प्रेमिक नहीं, स्वयं प्रेम हैं। आप प्रकाश के लिए भिक्षा या याचना नहीं कर रहे हैं, किन्तु स्वयं प्रकाश हैं। मैं न तो शरीर हूँ और न मन हूँ। छोटे व्यक्तित्व या क्षुद्र अहं के पास प्रकाश आवे किन्तु आप वह अहं नहीं हैं; आप तो वास्तव में प्रकाश हैं। इसका विचार कीजिए, इसकी उपलब्धि कीजिए और आप सभी वासनाओं से ऊपर उठ जायेंगे।

हिन्दुस्तानी भाषा में एक सुन्दर पद है जिसका अर्थ है, "तुम मधु हो मधुर, सभी वासनाओं से परे।"

यह व्यक्तिगत अनुभव की बात है कि जब भी राम ने किसी विषय पर सोचने की चेष्टा की है, उसने कितना ही कठिन प्रयास क्यों न किया हो, पर वह असफल रहा, यहाँ तक कि अन्तश्चेतना में उसका मन झुँझला उठा और राम ने कहा, "अरे जाने भी दो। मुझे इस प्रचेष्टा में कुछ भी करना-धरना नहीं है, चाहे इसमें यत्न लिया जाय या न लिया जाय, मुझे कोई परवाह नहीं।" और देखो आश्चर्य! अचानक वह कल्पना आ गयी। अरे, क्यों? क्यों प्रकाश के लिए इच्छा करता है? इच्छा को त्याग दे, उसे अलग फेंक दे और इच्छा मत कर।" और तभी प्रकाश आता है, ज्ञान आता है।

विश्वविद्यालय की उच्च कक्षा में अध्ययन करते समय राम ने प्रतिज्ञा की कि कोई भी कार्य मैं अध्यापकों की सहायता से नहीं करूँगा। और यह बड़ा ही दुस्साहस था। गणित-शास्त्र के कठिन सवालों को स्वयं ही हल करने का अपने द्वारा ही अर्पित दायित्व था जो बिना किसी कुंजी-पुस्तकों और अध्यापकों की सहायता के द्वारा करना था। गहन सवालों को हल करने में राम अथक परिश्रम करता रहा। कुछ मामलों में वह सफल रहा किन्तु अधिकांश में नहीं। राम शाम के पाँच बजे से लेकर सुबह के चार-पाँच बजे तक काम करता रहा फिर भी सवाल हल न हो सके राम बिल्कुल झुँझला गया और मकान की छत पर चहलकदमी कर ताजी हवा का सेवन करने गया। राम सोच रहा था कि एक छुरा लेकर अपने को खत्म कर दे क्योंकि उसे इन सवालों को अवश्यमेव हल करना था और अभी तक वह यह न कर सका। उस समय, जब राम ने अपना शरीर भी त्याग देने का संकल्प कर लिया तभी हल उसके

सम्मुख आ गये। इसलिए हम देखते हैं कि सभी कठिन मामलों में हम अपने को विचारों का चुम्बक बना देते हैं और हम विचारों से ऊपर उठ जाते हैं। अब आजकल राम क्या करता है? पहला काम जो वह करता है, वह यह है कि यह या वह काम करने की सारी कल्पनाओं को वह दूर फेंक देता है, और कहता है, "मैं कुछ भी लिखने की इच्छा नहीं करता हूँ—भाग जाओ, भागजाओ। हमें इससे क्या लेना है? मैं प्रकाश हूँ और मैं अपनी महिमा का आनन्द लेता हूँ, और मेरी अपनी महिमा का आनंद है सफलता, सच्ची सफलता। बाकी सभी चीजें केवल माया हैं। यदि सांसारिक सफलता भी मेरे पास आवे तो उसका आनंद मैं नहीं ले सकता हूँ। मेरा सभी आनंद ईश्वरत्व है।" यही मार्ग है। स्वर्ग का ज्ञान अधिकार में ले लीजिए और बाकी सभी कुछ उसके पीछे-पीछे आयेंगे। पहले अपने रहस्य को प्राप्त कर लें, बाकी सभी बातें धीरे-धीरे हो जायँगी। यह है विचार—"मुझे इस या उस के बारे में कुछ भी करना-धरना नहीं है। न मुझ पर कोई दायित्व है और न मुझे कोई भय है। मैं किसी के लिए भी जिम्मेवार नहीं हूँ, मुझे किसी को कुछ दाम नहीं देना है, मैं मैं ही हूँ, मैं प्रकाश हूँ।"

आपको संसार कौन-सा सुख दे सकता है? सभी सुख और आनन्द आपके भीतर से उत्पन्न होते हैं। सच्चा आत्मस्वरूप ही समस्त परमानन्द है, समस्त महिमा है, समस्त आनन्द है—मैं सदा के लिए उसका मजा लेता रहूँगा। यदि मैं इन वस्तुओं को पा जाऊँ और उसका मजा न लूँ तो क्या होगा? उसका फल यह होगा कि मेरा मन विचारों और कल्पनाओं से भरा होगा। कल्पनाएँ मुझे ढूँढ़ती फिरती हैं। यही विधान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विचार का चुम्बक बनने के निमित्त एक व्यक्ति को 'प्रकाश' की भी कामना से ऊपर उठना होगा। और "प्रकाश की

कामना से ऊपर उठना" यह समस्या का केवल निषेधात्मक पहलू है, जबकि सत्य यह है कि आप यह अनुभव करें कि "आप स्वयं प्रकाश हैं। आप अपनी ही महिमा का आनन्द लेते हैं।"

अब एक और रहस्य है। यदि आप किसी मित्र अथवा धन आदि की प्राप्ति करना चाहते हैं तो आपको क्या करना चाहिए? उस वासना का सम्पर्क त्याग दीजिए और यह निषेधात्मक भूमिका, जो कि समस्या का एक अंशमात्र है, अदा करने के उपरान्त, इसका निर्विवाद पक्ष ही ग्रहण कीजिए। यह निर्विवाद पक्ष एक वक्तव्य और आस्था है कि "मैं ईश्वरत्व हूँ, मैं प्रभुओं में प्रभु हूँ, प्रकाशों में प्रकाश हूँ, मैं ही सभी सौन्दर्य, सभी आनन्द, सभी सुख हूँ, मैं सभी लोगों का सर्वात्मा हूँ, मैं ब्रह्मांड का शासक हूँ।" इसका अनुभव कीजिए, अपने को ईश्वरत्व समझिए, झूठी कल्पना का सम्पूर्णतया त्याग कीजिए और जब वस्तुएँ सामने आवें तो उनकी उपेक्षा कीजिए, केवल ईश्वरत्व का आनन्द लें। तब अन्य लोगों की दृष्टि में आप सफल हैं, किन्तु आपकी अपनी सच्ची आँखों में आप सफल से भी अधिक हैं।

अभी उस रोज यह बताया गया था कि जब वायुमंडल में किसी विशेष स्थान पर हवा के विरलीकरण के हेतु वायुशून्य स्थान उत्पन्न हो जाता है, तो विरलीभूत वायु सूर्य के उत्ताप से ऊपर उठती है। तब क्या होता है? हवा उस वायुशून्य स्थान को पूर्ण करने के लिए लपकती है। इसी प्रकार जब आप इच्छा से ऊपर उठकर एक शून्य स्थान बना देते हैं, आपका शरीर शून्य-स्थान बन जाता है, आप ईश्वरत्व में मग्न होते हैं, तब, आपके समक्ष वह शरीर, वह गोचर अहं मृत और समाप्त होता है, उसने अपना स्थान रिक्त कर दिया है। और तब होता क्या है? चारों ओर का प्रत्येक पदार्थ आपकी ओर दौड़ता है।

कुछ लोगों के अनुसार चुम्बक का स्वभाव शून्य-स्थान के अलावा कुछ और नहीं है। अच्छा, दम घोटनेवाली अपनी स्वार्थी वासनाओं को छोड़ने के कारण, आपमें एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो गया है। इन्हें दूर फेंक दीजिए और तभी आप चुम्बक बनते हैं क्योंकि आपमें एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो गया है।

प्रश्न—बीमारी को दूर करने के लिए क्या यह जरूरी है कि द्रव्यों को अस्वीकार किया जाय ?

उत्तर—रोग दूर करने के निमित्त यह आवश्यक है कि आप अपने को पूर्ण स्वरूप देखें; आप सर्वत्र ईश्वरत्व के अतिरिक्त और कुछ न देखें। ईश्वरत्व का अनुभव करें और कोई बीमारी नहीं रहेगी। जब आप इन सबसे ऊपर उठ जायेंगे तभी स्वास्थ्य, शक्ति आदि आपकी ओर झुंड के झुंड आते जायेंगे। ईश्वर को देखने या सुनने की इच्छा मत कीजिए क्योंकि आप तो पहले ही से ईश्वर हैं। जभी आप ईश्वर को देखना चाहते हैं तभी आप ईश्वर को अपने से बाहर कर देते हैं और ईश्वर को दूर हटा देते हैं। आप मानव-समाज का कल्याण करना चाहते हैं। संसार इतना दीन क्यों बन जाय कि आपकी दृष्टि का भिखारी बने ?

न्यूटन ने अपने को चिन्तन-मनन में सम्पूर्ण रूप से लीन कर दिया था। चिन्तन वासनाओं से ऊपर उठने के सिवाय कुछ और नहीं है। उसका क्षुद्र स्वरूप अपने सम्मुख स्थित विषय में सम्पूर्ण रूप से मग्न था और उसका फल यह हुआ कि वह मानव का उपकारी बना। उसने इस ख्याल से समस्या का समाधान नहीं किया था कि मानव-जाति का उससे कल्याण हो या मानव-जाति ऋण के बोझ से दब जाय। उसके दिमाग में ऐसी कोई कल्पना न थी। वह अपना काम इसलिए करता था कि वह काम उसे आनन्द देता था। और यों वह मानव का उपकारी बन गया।

यदि लोग आपकी प्रशंसा न करें तो कोई बात नहीं। कोई बात नहीं, यदि आपका कोई नाम न हो। संसार की आँखों में जो सफलता है वह केवल इन्द्रियों का एक भ्रम है। आप जब भी यह अनुभव करते हैं कि "मैं सबके साथ अभिन्न हूँ, मैं ईश्वरत्व के साथ हूँ, मैं सफलता हूँ।" तब आपको तुरन्त उसी जगह सफलता मिल जाती है।

तो क्या पदार्थों को अस्वीकार किया जाय? अवश्य। याद रखिए, आप ईश्वरत्व हैं और जिस क्षण आप ईश्वरत्व अनुभव कर लें, द्रव्यों का अस्तित्व नहीं रहता। द्रव्यों को अस्वीकार कीजिए और ईश्वरत्व की अनुभूति पर बल दीजिए। दो विभिन्न पद्धतियाँ नहीं हैं, वे अभिन्न और एक हैं। इसी प्रकार से आप अपने सच्चे आत्मस्वरूप को सर्वोपरि-आत्मा, इन शरीर, सूर्य, नक्षत्रों, वृक्षों आदि के शासक और नियामक के रूप में पाते हैं। जब आप यह अनुभव कर लेते हैं और उसके ऊपर उठ जाते हैं और फिर आगे अनुभव करते हैं तो आप कैसा अनुभव करते हैं? जब राम चहलकदमी करता है तो सोचता है—"वह सूर्य है, और वह सूर्य इन बादलों और कुहरे का सर्जन करता है। यह सभी कुछ सूर्य के कारण है। कुछ लोग कहते हैं कि वे धरती और पानी आदि के लिए हैं। किंतु यह सत्य नहीं है। पानी, बादल, कुहरे सभी सूर्य से जन्मे हैं। सूर्य उनका सर्जन करता है और जब वह उनकी ओर कठोर नेत्र से देखता है तो बादल और कुहरे अदृश्य हो जाते हैं।" तो यह उपलब्धि का एक स्तर है। जब आप अपने को सूर्य की भाँति सर्वोपरि-आत्मा अनुभव करने लगते हैं तब आप निम्न-स्तर के आत्मा के कुहरे को भगा देते हैं।

लोग कहते हैं, "मैं ईश्वर की प्रतिमा के रूप में सृष्ट हुआ हूँ।"

राम कहता है, "प्रतिमा बने रहोगे तो सदा दुर्दशाग्रस्त रहोगे।" आप ईश्वर की प्रतिमा या उनके प्रतिरूप नहीं हैं बल्कि स्वयं ईश्वर हैं।

पानी में पड़ रहे प्रतिबिम्ब को लीजिए। पानी में पड़ रहे उस प्रतिबिम्ब के सम्बन्ध में, सूर्य सर्वोपरि-आत्मा कहा जाता है। इसी प्रकार अनुभूति की पहली सीढ़ी में, मनुष्य अपनी सर्वोपरि-आत्मा को, वैसा ही अनुभव करता है जैसे प्रतिबिम्ब के लिये सूर्य।

आँखों को मूँदकर और खोलकर साधारणतया राम यह बोध करता है, "मैं सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि सब पर छाया हुआ हूँ। मैं उन्हें शक्ति, तेज और प्राण देता हूँ। मैं ही उनका सहारा और आश्रय हूँ। मैं सर्वोपरि-आत्मा हूँ।" यह एक दशा है। यदि आप इस दशा की उपलब्धि कर लें तो आप देखेंगे कि सब ईर्ष्या, घृणा और भय भाग जाते हैं। कोई व्यक्ति कहीं आपके उत्पादन को स्वाधिकार में न ले ले या उनसे अपनी पूँजी न बना ले, इसके खतरे की चिन्ता आपको नहीं रहती।

जब बच्चा एक पुस्तक ले जाता है तो क्या उसकी माँ घबरा जाती है? नहीं, क्योंकि बच्चा भी उसी का है और पुस्तक भी उसी की है। इसलिए क्यों वह घबराये? इसलिए यदि कोई व्यक्ति आपका कुछ चुरा लेता है तो वह व्यक्ति और आप तो अभिन्न हैं, और जो कुछ वह चुराता है वह तो उसका और आपका, दोनो का है; सो डरनेवाली बात क्या है? आपके लिए सफलता या आनन्द की प्राप्ति भीख माँगकर नहीं होगी। लोग जिसे सफलता कहते हैं, उस दृष्टिकोण से भी न उसे देखना है और न पाना है। आपका मूल लक्ष्य तो वास्तव है और यदि संसार के अन्य सुख या पदार्थ आपके पास आवें तो आप उनसे कह दें, "ऐ शैतान, तू अलग हट, मैं तेरे हाथों से कुछ भी नहीं लेता।" तब आप कितना प्रसन्न हो जाते हैं। आप स्वयं स्वर्ग बन जाते हैं और आप अपना जीवन सफल बना लेते हैं।

स्वास्थ्य प्राप्त या अर्जन करने के निमित्त, और रोग पर विजय प्राप्त करने के लिए क्या द्रव्यों का अस्वीकार करना अनिवार्य है ? राम कहता है, आप तो केवल अपने सच्चे आत्मस्वरूप की अनुभूति पर ही सारा ज़ोर लगायें और अपने को उपलब्धि की द्वितीय अवस्था पर पहुँचा दें, उस अवस्था पर, जब सूर्य की ओस और कुहरे की ओर दृष्टि पड़ते ही, वे अदृश्य हो जाते हैं। इसलिए जब आप अपने में द्वितीय अवस्था की उपलब्धि कर लें, तब आप एक ऐसी अवस्था में पहुँच जायँगे, जहाँ स्वाभाविक अद्वैतभाव विराजमान है।

श्वास का अभ्यास या प्राणायाम क्या है ? इसके सम्बन्ध में लोग इस अभ्यास पर जोर देते हैं किन्तु राम कहता है कि जब आपका मन सत्य में मग्न और लीन हो जाता है तो श्वास का अभ्यास खुद ब खुद अपना काम करेगा। जिस क्षण हम इस अनुभव में लुप्त हो जाते हैं, उसी क्षण हम ओम् का उच्चारण करने लगते हैं और हमारी श्वासक्रिया अति अभीष्ट और सर्वश्रेष्ठ ढंग से होने लगती है। वह फेफड़ों को भर देती है, यहाँ तक कि पेट के निम्नतर प्रदेश से भी आती और आपको भर देती है। प्रधान बात है वास्तव का अनुभव करना, और उसकी अनुभूति हो जाने पर सभी कुछ वहाँ प्रस्तुत हो जायगा।

इस देश में ऐसे लोग हैं जो सुन्दर आँखें, सुडौल नाक और चिबुक पाना चाहते हैं।

राम कहता है कि आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करने के बाद भी आप परिमित हैं और प्रसन्न नहीं हैं। लोग इन शक्तियों को धन कमाने में लगाना चाहते हैं, और उस दशा में भी आप परिमित हैं, दुर्दशाग्रस्त और अभागे हैं।

इस ओर ध्यान दीजिए। यदि आप सौन्दर्य, रंग, धन, स्वास्थ्य आदि वासना के पदार्थ पाना चाहते हैं, तो आपको वेदान्त के

निर्दिष्ट संन्यास का अभ्यास करना होगा, किन्तु यह अभ्यास सम्पूर्ण रूप से नहीं, केवल आंशिक रूप से। इस प्रकार आंशिक रूप से अभ्यास करने पर आंशिक लाभ ही आपके हाथ लगेगा और आंशिक लाभ से मामला कुछ सुधरेगा नहीं। तब क्यों न आप उस मूल स्रोत ईश्वर को प्राप्त कर लें और वह विशेष पदार्थ जिसकी इच्छा आप करते हैं आपके पास आ जायगा और अन्य सभी वस्तुएँ भी आपको ढूँढती रहेंगी। इसलिए कृपया वासना की विशेष वस्तुओं के बन्धन में मत पड़े रहिए—राजपथ पर चलिए। स्वर्ग और परमानन्द का सीधा रास्ता है अपने को आज ही स्वर्ग उपलब्ध कर लेना।

उपलब्धि दो उपायों से होती है—या तो आस्था से या ज्ञान के माध्यम द्वारा। आप वेदान्त-साहित्य का अध्ययन कर अपने सन्देह दूर कर सकते हैं और निकट भविष्य में राम इस दर्शन की स्पष्ट और सम्पूर्ण व्याख्या आपके सामने प्रस्तुत कर सकेगा, ऐसी संभावना है। आप आत्मोपलब्धि की प्राप्ति, वेदांत-साहित्य के अध्ययन द्वारा नहीं कर सकते हैं तो आपको उसमें आस्था रखना चाहिए, यह दूसरा मार्ग है।

जब ईसाई लोगों को उपलब्धि की एक झाँकी मिल जाती है, वे उस तरह नहीं देख पाते जैसा ईसामसीह ने देखा था—किंतु उनमें आस्था है। इसलिए यदि आपके पास पर्याप्त समय और रुचि है तो वेदान्त-साहित्य का अध्ययन करें। यदि समय नहीं है तो राम में, ईश्वर में, अपने आत्मस्वरूप में आस्था रखिए और जानिए कि आप बच गये। अपनी मुक्ति की उपलब्धि कीजिए। कोई दूसरा उपाय नहीं है।

ओं ओं ओं



मांस खाने के विषय में वेदान्त का मत

[युक्तराष्ट्र अमरीका में दिया हुआ व्याख्यान]

देवियों तथा सज्जनों के रूप में मेरे ही आत्मस्वरूप,

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

प्रश्न—मांस खाने के विषय में क्या मत है ?

उत्तर—लोगों की यह धारणा है कि भारत के लोग पशुओं के प्रति दया-भाव के कारण मांस नहीं खाते हैं। यह सम्भव है कि वहाँ कुछ मतावलम्बी ऐसे हों जो इसी कारण से मांस खाने से परहेज करते हों, किन्तु कम से कम वेदान्ती लोगों की मांसाहार से विरक्ति का यह कारण नहीं है।

वेदान्त आपसे इस आधार पर मांस खाने से परहेज करने को नहीं कहता। बिल्कुल नहीं। वेदान्ती लोग, विशेष रूप से स्वामी लोग मांस नहीं खाते, किन्तु पशुओं के प्रति दया का भाव उनके मांस न खाने का कारण नहीं है। यह युक्ति या तर्कसंगत नहीं है।

वेदान्त के अनुसार दया-मात्र ही दुर्बलता है। हो सकता है कि आप इस बात से चौंक पड़ें, किन्तु बात है ऐसी ही। इस प्रकार की दया, जो दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा-मात्र है, या यों कहा जाय कि दूसरों की अभिलाषाओं और तरंगों को सन्तुष्ट करना ही है, इस संबंध में, दार्शनिकों का भी ऐसा ही विचार है। नर और नारियों की अपने साथियों के प्रति यह सहानुभूति उनके मिथ्याभिमान के सिवा अ कुछ नहीं है; यह एक प्रकार की मूर्तिपूजा और दुर्बलता है। यह दया या मिथ्याभिमान, दूसरों को

प्रसन्न करने की यह इच्छा, क्या समाज के लिए प्रशंसनीय है ? नहीं, यह सब अज्ञान के गुण हैं, और कुछ नहीं।

दया या करुणा के नाम पर कितने पाप और भूलें की जाती हैं ? साथियों के प्रति सहानुभूति की इच्छा से कितनी भूलें हुआ करती हैं ?

एक मनुष्य की संगति कुछ ऐसे नौजवानों के साथ हो गयी, जो खाना-पीना और मौज उड़ाना पसन्द करते थे। उन नौजवानों में से एक ने शराब पी जाने का प्रस्ताव किया। दूसरों ने इसका अनुमोदन किया और वह नया साथी अपने मित्रों की दृष्टि में एक अच्छा साथी बनने की इच्छा का शिकार होता है, और केवल अपने साथियों को प्रसन्न करने के लिए वह शराब पीना शुरू करता है। उसकी अपनी इच्छा शराब पीने की नहीं है, किन्तु अपने साथियों को खुश करने के लिए वह उन लोगों का अनुकरण करता है। उसमें दूसरों को प्रसन्न करने की अभिलाषा है और यह अभिलाषा ही उसे मदिरा पिलाती है। दूसरी बार यही सज्जन फिर इसी प्रकार की संगति में पड़ता और दूसरों को केवल खुश करने की इच्छा से शराब पीने को फिर प्रलुब्ध होता है। और अक्सर ऐसा करते-करते एक समय ऐसा आ जाता है जब वह मदिरा-पान के अभ्यास का स्वयं दास बन जाता है।

इसी प्रकार, केवल दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से नारियाँ भी ऐसा कार्य करती हैं जो उन्हें शनैः-शनैः किहीं बुरे व्यसनों की दासी बना देता है। इसलिए वेदान्त का कहना है कि दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा वास्तव में अज्ञान, दुर्बलता और मिथ्याभिमान के योग के सिवा कुछ और नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से कभी कोई काम मत कीजिए। जो 'नहीं' कह सकता

है, वह वीर है। 'नहीं' कहने की आपकी सामर्थ्य से, आपके चरित्र-बल और वीरता की शक्ति परिलक्षित होती है।

अब दया या करुणा के सम्बन्ध में विचार कीजिए। कितने ही लोग, दूसरों के भावों का ख्याल रखना चाहिए, केवल इस फेर में पड़कर अपने को नरक में रखते हैं। हो सकता है कि राम जो कुछ कह रहा है उसे आप घोर पापपूर्ण विधान कहें, किन्तु यह एक ऐसा विधान है जिसके गुण की उपलब्धि आपको कभी न कभी निश्चय होगी।

जरा देखिए कि इस संसार में कितने लोग केवल इस कारण नरक भोग रहे हैं कि वे दयालु हैं; सम्बन्धियों या मित्रों के विरोध के कारण, अथवा किसी के हृदय में ठेस पहुँच जाने के भय से, वे सत्य का अनुसरण करना या सत्य की आज्ञानुसार आचरण करना निर्दयता समझते हैं।

वेदान्त कहता है कि यदि आप सत्य पर इसलिए आपत्ति करते हैं कि उससे किसी का हृदय टूक-टूक हो जायगा, तो सत्य की हत्या की अपेक्षा किसी शरीर की मृत्यु बेहतर है। वेदान्त कहता है, "इस या उस व्यक्ति के भावों की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर कीजिए।" क्योंकि यदि आप सत्य का यथोचित आदर कर रहे हैं तो वास्तव में आप मित्र का भी आदर कर रहे हैं। उसके मिथ्याभिमान या वासनाओं का जितना ही अधिक आदर आप करेंगे या ध्यान देंगे, उतना ही अधिक आप उसके सच्चे आत्मा की (जो कि सत्य स्वरूप है) हत्या का मानो प्रयत्न करेंगे। "उसके बाह्य शरीर की अपेक्षा 'सत्य' का अधिक आदर कीजिए।"

फिर, कितने ही लोग ऐसे हैं जो इस तथाकथित आत्म-सम्मान की धारणा के वशीभूत होकर अपने लिए नरक की सृष्टि कर रहे हैं। यह 'आत्म-सम्मान' शब्द का कितना घोर भ्रमात्मक अर्थ

लगाया जाता है। 'आत्म-सम्मान' से लोग इस तुच्छ शरीर का, इस क्षुद्र व्यक्तित्व का 'आत्म-सम्मान' समझते हैं।

माताओं, बहनों, पिताओं, भाइयों और बच्चों के रूप में, हे पवित्र-स्वरूप! हे ईश्वर! देख लो कि आत्म-सम्मान का अर्थ इन तुच्छ शरीरों या व्यक्तित्व का सम्मान नहीं है। देख लो कि आत्मसम्मान का अर्थ है सत्य के लिए आदर और सच्चे आत्म-स्वरूप के लिए सम्मान। जिस प्रकार के आत्म-सम्मान को आप बढ़ावा दे रहे हैं उससे 'आत्म-सम्मान' की ओट में आप अपने सच्चे आत्मा का अपमान कर रहे हैं।

जब आप ईश्वर-चेतना से परिपूर्ण हो जाते हैं तब आप अपने आत्मस्वरूप का सम्मान करते हैं, जब आप आन्तरिक ईश्वर के ध्यान में निमग्न होते हैं तब आप आत्म-सम्मान से पूर्ण हैं। देह की पूजा के द्वारा आप आत्महत्या कर रहे हैं, आप अपने लिए खन्दक खोद रहे हैं।

मांस के विषय में वेदान्त कहता है, "अपने शरीरों से चिपके मत रहिए, अपने शरीर के मरने या जीने की चिन्ता मत कीजिए। इसकी परवाह मत कीजिए कि लोग आपके शरीर की पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं। इससे ऊपर उठिए।"

कोई मनुष्य इस शरीर को वस्त्र पहना देता है और दूसरा उन्हें फाड़ डालता है, इसकी कोई परवाह न होनी चाहिए।

"जब कि प्रशंसक और प्रशंसित, निन्दक और निन्दित एक ही हैं तो न प्रशंसा है न निन्दा।"

ऐसी दशा में, यदि आप अपने सच्चे आत्मस्वरूप की उपलब्धि करें, यदि आपके लिए इस क्षुद्र शरीर का ज्ञान मिथ्या हो जाय, तो जहाँ तक आपका सम्बन्ध है, दूसरों के वाह्य मांस और रक्त का आदर लुप्त हो जायगा।

आज राम आपके कुछ अतिप्रिय अन्धविश्वासों को चूर्ण-चूर्ण कर देगा।

वेदान्त कहता है, "आप दूसरी मूर्त्तियों को उतनी ही सच्ची समझ सकते हैं जितनी आप अपनी देह-रूपी मूर्त्ति को वास्तव समझते हैं। यह एक विधान है।" यही नियम है। दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व को आप ठीक उसी मात्रा में वास्तव समझकर ग्रहण कर सकते हैं, जिस मात्रा में आप अपने व्यक्तित्व या शरीर को वास्तव समझते हैं। यह विधान है।

किन्तु जब आप व्यक्तित्व या शरीर से ऊपर उठेंगे तब दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व का भाव आपके पास लुप्त हो जायगा, वे वायवीय या अति-सूक्ष्म बन जायँगे, वे पहले की तरह स्थूल न रहेंगे। जब मामला ऐसा हो जायगा तो सत्य की उपलब्धि-प्राप्त उस मनुष्य के लिए ऐसी स्थिति हो जायगी कि चाहे कोटियों सूर्य और नक्षत्र शून्यता में फेंक दिये जायँ, उसके लिए कुछ अन्तर नहीं पड़ेगा। उसके लिए बकरों, भेड़ों या बैलों के मरने से क्या आता-जाता है? कुछ नहीं, बिल्कुल कुछ नहीं, उसके लिए इससे कोई भेद नहीं पड़ता, वह इससे ऊपर है।

संसार के सबसे बड़े महायुद्ध में श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि का काम कर रहे थे। वहाँ अर्जुन विषाद से भर गया और भयभीत हो गया, दया और करुणा से वह व्याकुल हो गया। तब वह वीर काँपने और थर्राने लगा, करुणाभाव ने उसे विह्वल बना दिया। ईश्वर के अवतार कृष्ण ने, संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष कृष्ण ने, भारत के नहीं बल्कि सारे संसार के ईसा-मसीह कृष्ण ने तब अर्जुन से कहा, "तुम यह शरीर नहीं हो, यह व्यक्ति तुम नहीं हो, वास्तव कर्त्ता तो ईश्वर है।" कृष्ण ने उससे कहा, "तुम्हारे शरीर द्वारा ईश्वर काम कर रहा है। कृष्ण ने वहाँ उससे बातें की और

उसमें ईश्वर-चेतना जाग्रत कर दी, उसको स्पष्ट रूप से बता दिया कि वह वास्तव में क्या है, उसे भय से मुक्त कर दिया, उसे चिन्ता और दुःख से उबार लिया। उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारा सच्चा आत्म-स्वरूप अविनाशी है, कल, आज, सदा वह एकसाँ है, यह अपरिवर्त्तनीय है, निर्विकार और निर्विकल्प है। और उन्होंने उससे कहा, "अर्जुन, तुम मर नहीं सकते हो। इन शरीरों में से किसी को भी मिटा दो किन्तु उसका सच्चा स्वरूप कभी नहीं मरता। तुम कभी नहीं मरते। और यदि तुम्हें पूर्ण सत्य की उपलब्धि न भी हो और आवागमन की चा दीवारी में तुम बन्दी ही बने रहो, फिर भी यह जान लो कि वह सत्यस्वरूप न तो तुम्हारा शरीर है और न उन लोगों का शरीर; सत्यस्वरूप ईश्वर की अनुभूति करो जो सदा अमर है। तुम काँपते और थर्राते क्यों हो ? अपने सामने उपस्थित कर्त्तव्य को पहचानों ? यदि इस समय तुम्हारा सांसारिक कर्त्तव्य इन सब लोगों का वध करना है, तो इन्हें मार डालो।" कृष्ण उनसे कहते हैं, "मैं ईश्वरों में परमेश्वर हूँ, प्रकाशों का प्रकाश हूँ। और क्या मैं प्रतिक्षण कोटि-कोटि पशु-पक्षियों का नाश नहीं कर रहा हूँ ? उन्हें शून्यता में नहीं फेंक रहा हूँ ? मैं, प्रकृति, ईश्वर, विधाता निरंतर ऐसे काम कर रहा हूँ, फिर भी मैं सदा निर्लिप्त और निर्मल हूँ। ईश्वर मारता है, फिर भी क्या ईश्वर निन्दा का पात्र है ? नहीं, ईश्वर फिर भी शुद्ध है।" फिर कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "अब यदि तुम सत्य की उपलब्धि कर लेते हो, यदि तुम ईश्वर से अभिन्न हो जाते हो, यदि तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, ता तुम्हारा यह शरीर ईश्वर का यंत्रमात्र रह जायगा। यदि न्याय, कर्त्तव्य, सत्य और अधिकार के लिए तुम्हारा शरीर करोड़ों शरीरों का नाश और ध्वंस कर दे, तब भी तुम शुद्ध, पूर्ण और निर्मल ही रहोगे।"

ऐसा सत्य लोगों को अनुभव करना होगा। किन्तु आप इसकी उपलब्धि करें या न करें, राम सत्य कहने से झिझकेगा नहीं।

यह वेदान्त था, जो नरसंहार करने में, यहाँ तक कि अर्जुन के बहुत ही निकट और प्रिय सम्बन्धियों का तथा उनके गुरु, चाचा, भाई आदि का विनाश करने में हिचकिचाया नहीं। वेदान्त कहता है कि इस संहार के कारण अर्जुन कलंकित नहीं हुआ। तो फिर बकरों या भेड़ों, बैलों या अन्य कोई भी पशुओं को मारने में वेदान्त कैसे संकोच कर सकता है? फिर भी वेदान्त आपको बिल्कुल अन्य कारणों से मांस से परहेज करने को कहता है।

मांस-भक्षण से आप ऐसी दशा या अवस्था में हो जाते हैं कि आप अनायास अपने मन को एकाग्र नहीं कर सकते। यदि मांस-भक्षण आप छोड़ नहीं सकते, यदि इस अभ्यास पर आप विजय नहीं पा सकते, तो वेदान्त कहता है, "खाओ, इसे छोड़ो मत।" विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रभाव डालते हैं। यदि एक व्यक्ति मदिरा पान करता है तो वह मतवाला हो जाता है। अफीम का सेवन करने पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है। एक व्यक्ति संखिया खाता है और उस पर एक विशेष प्रतिक्रिया होती है। इसी प्रकार एक विशेष खाद्य पदार्थ एक विशेष प्रभाव डालता है। और उसी प्रकार मांस का भी अपना एक असर होता है। मांस शरीर पर जो असर डालता है वह धर्म के विद्यार्थियों के अनकूल नहीं है।

यदि आप एक योद्धा हैं या एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके काम बड़े उद्यम-पूर्ण हों, तो आपको मांस खाना चाहिए, क्योंकि आपको उसकी आवश्यकता है और आपको केवल शाकाहारी भोजन पर ही निर्वाह न करना चाहिए। अन्य वृत्तियों के लोगों के बारे में राम कहता है कि अपनी-अपनी प्रकृति पर उसे आजमाकर

देखिए। कुछ लोग इसके बिना मजे में काट सकते हैं और कुछ नहीं काट सकते। प्रकृति की योजना ऐसी है कि योग्यतम अवश्य जियेगा। हम देखते हैं कि ह्वेल मछली बड़ी हो रही हैं। वे जीवित रहती हैं। उनके जीवित रहने के लिए प्रकृति चाहती है कि वे छोटी मछलियों का भक्षण करें। हजारों छोटी मछलियों का नाश हो जाय परन्तु बड़ी मछली जीती रहे। यह प्रकृति की व्यवस्था है—उसकी योजना है। इसी प्रकार हम खनिज संसार में देखते हैं कि धरती या मिट्टी मर जाती है किन्तु वनस्पति का साम्राज्य जीवित रहता है। वनस्पति मिट्टी से भोजन लेती है। फिर पशुओं को जीवित रखने के लिए वनस्पति का नाश होना अनिवार्य है। पशु वनस्पति खाकर जीवित रहे, यह प्रकृति की योजना है। यह प्रकृति की योजना है कि जीव-जगत् का सर्वोच्च वर्ग मनुष्य पशुओं पर निर्वाह करे और उसके काम में आवे। प्रकृति की व्यवस्था ऐसी है। राम का इससे अभिप्राय पशुओं को खाना नहीं बल्कि उन्हें केवल काम में लाना है। पशु मनुष्य की सेवा करे। फिर दुनिया के साधारण मनुष्यों में भी हम देखते हैं कि उच्चतर लोग स्वभावत: बढ़ते चले आते हैं। जब दूरव्यापी युद्ध और महामारी आती है तब निम्नतर और दुर्बलतर प्राणी उच्चतर प्राणियों के लिए मरते हैं। यही प्रकृति की योजना है। यही विधान ब्रह्मांड का संचालन करता है।

इस प्रकार राम कहता है, यदि मांस खाकर आप विश्व की सेवा उत्तमतर रूप से कर सकते हैं, तो खाइए, यदि मांस का परिहार कर आप उच्चतर सत्य की वृद्धि कर सकते हैं तो उसे न खाइए।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने तुच्छ आत्मस्वरूप को ईश्वर का स्वरूप समझे। प्रत्येक व्यक्ति को सब काम वेदान्त के अनुसार निस्स्वार्थ और अकर्तृत्व भाव से करना चाहिए। आपको

सब काम इस ढंग से करना चाहिए कि मानों आप उसे नहीं कर रहे हैं अर्थात् इस तुच्छ अहं के द्वारा आप उसे नहीं कर रहे हैं, या इस अहंभाव और अभिलाषाओं के दृष्टिकोण से आप उसे नहीं कर रहे हैं। यह अहं का दृष्टिकोण आपको त्यागना होगा। जब इस संसार में, आपका शरीर प्रकृति के अनुसार काम करता है, किसी स्वार्थपूर्ण अहंभावपूर्ण वासनाओं के बिना सब के लिए काम वितरण करता, काम का निरूपण करता और काम का सम्पादन करता है, तब वह काम सबके लिये, अखिल विश्व के लिये होता है। यदि समस्त संसार के उद्देश्य की प्रगति के लिए इस शरीर-यंत्र को मांस खाना उतना ही आवश्यक हो जितना कि एक कारखाने में कुछ पहियों का तेल से चिकनाया जाना; यदि आपके शरीर के लिए मांसाहार से तैलसिक्त करना उतना ही जरूरी है जितना कि उन कुछ खास पहियों के लिए चर्बी या तेल से चिकनाया जाना; तब आप मांस खाने से न हिचकिचायें। किंतु जब आप अपनी जीभ को आनन्द पहुँचाने के लिए मांस खाते हैं तब वह पाप हो जाता है। यदि अपनी इच्छाओं की तृप्ति के विचार से आप मांस खाते हैं तो वह अन्य सब पापकर्मों के समान पाप हो जाता है। तभी वह पाप बन जाता है।

भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं, जो सड़कों से चलते हुए दुकानों में मृतक शरीर को लटकता देखकर बेहोश हो जाते हैं। खाना तो दरकिनार, वे उसे देख भी नहीं सकते।

अपने स्वार्थी स्वाद के सन्तोष के लिए जब आप मांस भक्षण करते हैं, तब मांसाहार पाप हो जाता है किंतु यदि आप उसे दवा की भाँति लेते हैं, यदि आप केवल महत्वपूर्ण काम करने और अपने शरीर को मानव-जाति की कल्याण-वृद्धि के एकमात्र उद्देश्य से उसे लेते हैं, तो मांसाहार कोई पाप नहीं है।

लोग स्वाद को ही अपना मुख्य अभिप्राय बनाते हैं। यदि कोई वस्तु स्वादिष्ट है, और सत्य के पक्ष को भी आगे बढ़ाती है तो उसे ग्रहण कर लीजिए। किन्तु केवल मिठास के लिए किसी वस्तु को ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। साधारणतः स्वादिष्ट वस्तुएँ उपयोगी भी होती हैं किंतु सदा ऐसा नहीं होता।

अब इससे एक दूसरे प्रश्न का उदय होता है। कितने ही धर्म-ग्रन्थ प्रायः गलत ढंग से पढ़े जाते हैं, कितनी ही पुस्तकों की भ्रमात्मक व्याख्या की जाती है। यह समाज के लिए बहुत हानि-कारक व्याधि है—अर्थात् धर्मग्रन्थों का भ्रान्तिपूर्ण पाठ और तथाकथित पवित्र धर्मग्रन्थों वा पुस्तकों का दुरुपयोग बहुत हानि-कारक व्याधि है।

कहा जाता है कि मिल्टन (Milton) की कृतियों को पढ़ने के लिए एक दूसरे मिल्टन की आवश्यकता है। बहुत ठीक है। इसी तरह एक पैगम्बर को समझने के लिए एक पैगम्बर की जरूरत है और ईसा को समझने के लिए आपको स्वयं ईसा बनना पड़ेगा। वेदों को समझने के लिए आपको वेद का ऋषि बन जाना होगा। वेदान्ती लेखकों ने, जिनके लेखों का तो उपयोग किया जाता है, किंतु जिनके नाम नहीं लिये जाते, उन्होंने इस कल्पना को बड़ी खूबी से लिया है। इन लेखकों की उपलब्धि ऐसे स्तर की थी कि मानों पाठकों का शरीर उन्हीं का था। वेदों में हमें ऐसे वाक्य मिलते हैं, "ऐ मनुष्यों, वेदों से ऊपर उठ जाओ, उनके उपदेशों का उपयोग करो और उनसे लाभ उठाओ। देवताओं और देवदूतों से ऊपर उठो। देखो तुम क्या हो? तुम सब कुछ हो।" यही ईसामसीह कहता है। हम बाइबिल से ऐसी पंक्तियाँ चुन सकते हैं जिनका अर्थ इसी प्रकार का है—"स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।" लोग इसका सम्पूर्णरूप से गलत उपयोग करते हैं, वे अर्थ का अनर्थ करते हैं। यह बात राम को एक कहानी की याद दिलाती है।

एक बार एक गुरु बहुत थककर एक बिस्तर पर पड़ गया और अपने चेले से बोला, आओ और अपने पैरों से मेरे शरीर को दाब दो। भारत में इस ढंग से शरीर दबवाने की प्रथा बहुत चालू है। इस लिए गुरु ने अपने चेले से अपना शरीर दाब देने को कहा, किन्तु उस बालक शिष्य ने कहा, "नहीं, नहीं, गुरुजी! मैं कदापि ऐसा नहीं करूँगा। आपका शरीर पवित्र है, आपका व्यक्तित्व परमपूत है। आपके शरीर पर मैं पैर नहीं रख सकता। ऐसा करना घोर पाप होगा। मैं ऐसा घोर अधर्म नहीं करूँगा। मैं आपके लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ, अपना प्राण देने को भी तैयार हूँ किन्तु आपका शरीर पैरों से नहीं कुचलूँगा।" गुरु ने कहा, "ऐ बेटा, आ जा। मेरी देह दाब दे।" शिष्य रोने लगा किन्तु ऐसा अधर्म करने को तैयार न हुआ। गुरु ने कहा, "ऐ मूर्ख लड़के! तुम मेरे निचले अंगों को पैरों से नहीं कुचलना चाहते, तुम मेरे शरीर का अपमान करना नहीं चाहते किन्तु तुम मेरे पवित्र होठों को रौंद रहे हो, तुम मेरे पवित्र मुखमंडल को कुचल रहे हो। इनमें अधिक अधर्म कौन-सा है? गुरु की आज्ञा की अवहेलना करना अधिक अधर्म है या उसका शरीर दाबना?

ईसा या मुहम्मद के पवित्र ग्रन्थों अथवा वेदों को लोग अनायास ही कुचल डालते हैं किन्तु इस रक्त और मांस को लोग पूज्य और पवित्र समझते हैं, उसी रक्त और मांस को जिसे खाने को लोगों से ईसा ने कहा था। क्या ईसा ने अन्तिम भोज में अपना मांस खाने और शोणित पीने को लोगों से नहीं कहा था? जब रोटी तोड़ी गयी थी, उसने कहा था, "यह मेरा मांस है। यह मेरा रक्त है।" सभी भविष्यद्रष्टा ऐसा देखते हैं। सब व्यक्तियों में, सब देहों में, वे ईश्वर को देखते हैं। वे उन पर प्रभुता पाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लोग उनके शरीर को रौंद जायें और इन शरीरों से ऊपर उठ

जायें। किन्तु आप हैं कि उनके शरीर तो नहीं दावेंगे चाहे उनकी पवित्र वार्त्ता को भले ही कुचल डालें।

व्यक्तित्व से ऊपर उठिए और भीतर के परमेश्वर का सन्धान कीजिए। अगर ईसा कभी इस संसार में था तो वह आपके शरीरों में रहता है। ईसा को अपने धर्म का प्रारम्भ-विन्दु (Starting Point) बनाइए, उसे अपने आगे बढ़ने का प्रस्थान-विन्दु बनाइए। उसे अपनी सीमारेखा या अपने चारो ओर बिखरे हु ए कंटकों का ढेर न बनाइए। उसे अपने धर्म का, अपनी प्रगति का प्रारम्भ-विन्दु बनाइए। स्वयं ईसा बन जाइए और ईसा का अर्थ समझिए।

लेकिन, आजकल क्या हो रहा है ? जो लोग इस तुच्छ मिथ्या शैतानी अहंभाव से मुक्ति पाना नहीं चाहते, वे ईसा को भौतिक बनाना चाहते हैं और वे ईश्वर को घूँघट की ओट में भी रखना चाहते हैं। वे ईश्वर को साकार और वाह्य वस्तु ही बनाये रखना चाहते हैं। अपने को उठाकर ईश्वर बनने के बदले वे ईश्वर को नीचे उतारकर अपने समान करना चाहते हैं। बायबिल में दो हास्यकर शब्दों से इसका उदाहरण दिया गया है—"ईश्वर की आत्मा जल पर चिन्ताकुल रही।" (The Spirit of God brooded over the waters.)

भारतवर्ष में एक बालक था जो कि किसी मदिरा-विक्रेता का पुत्र था। वह स्कूल में भरती किया गया और अंग्रेजी पढ़ने लगा।

भारतवर्ष में, विशेषकर ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा चलाये जानेवाले स्कूलों में, पहले बायबिल पढ़ायी जाती है। अंग्रेजी पाठ का सम्बन्ध भी बायबिल से था। जब लड़का इस वाक्य पर पहुँचा, "ईश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही" तब वह बहुत घबराया। लड़का, स्पिरिट (शराब)

शब्द से सुपरिचित था और वह ब्रूडेड (जन्म दिया) शब्द तथा वाटर (जल) शब्द भी जानता था; किन्तु वह 'गाड' (ईश्वर) शब्द से अपरिचित था। उसने बड़बड़ाया, "गाड की शराब ने जन्म दिया।" क्या 'गाड' का अर्थ जौ है या अंगूर ? मुझे मालूम है, जौ या अंगूर से शराब बनती है। और उसने सोचा कि यह भी एक विचित्र प्रकार की शराब थी, जो "समुद्र में रक्खी गयी।" उसका पिता मदिरा में पानी मिलाया करता था और वह ऐसी ही मदिराओं से परिचित था किन्तु यह तो एक विचित्र ढंग का मिश्रण था।

इसी तरह लोग धर्म-ग्रन्थों का अनर्थ करते हैं क्योंकि वे अधिकतर मदिरा-विक्रेताओं के बीच रहते हैं, क्योंकि ये लोग स्थूल भौतिक पदार्थों में बहुत अधिक रहते हैं, वे उन उत्कृष्ट तथा पवित्र धर्म-ग्रन्थों का स्थूल अर्थ ग्रहण कर लेते हैं और उन्हें भौतिक बना देते हैं।

एक व्यक्ति फौज में काम करता था। वह एक महिला से प्रेम करता था, उसका बड़ा अफसर भी उसी महिला से प्रेम करता था। इस महिला ने उस अधीनस्थ कर्मचारी को अपना दिल दे दिया था। अधीनस्थ कर्मचारी छुट्टी लेकर घर गया। महिला भी इस मौके से लाभ उठाकर उसके घर पहुँची। विवाह निश्चित हो गया, इस कारण उसने अपनी छुट्टी बढ़वाना आवश्यक समझा और छुट्टी बढ़ाने को उसने अपने ऊपर के अफसर को तार दिया। अफसर को सारी बातें मालूम हो गयीं और वह जान गया कि उस रमणी से विवाह करने के लिए यह छुट्टी माँगी गयी है। वह अफसर ईर्ष्यालु था और छुट्टी नहीं देना चाहता था। जवाब में उसने जल्दी से संक्षिप्त भाषा में यह सन्देश भेजा, तुरन्त नौकरी पर आओ। (Join

at once.)* इसका अर्थ यह था कि अधीनस्थ कर्मचारी तुरन्त आकर नौकरी में सम्मिलित हो। यह व्यक्ति वह सन्देश पढ़ रहा था जिसमें कहा गया था, 'तुरन्त नौकरी पर आओ'। और वह बहुत चाहता था कि घर पर ठहरे लेकिन सन्देश कहता था, 'तुरन्त आओ'। उसे इस बात से बड़ी निराशा और बेकली हुई। जब वह ऐसी मानसिक दशा में था, वह रमणी आयी और उसे उस व्याकुल दशा में देखकर उससे कारण पूछने लगी। उसने उसे वह तार दिखाया। रमणी की उपस्थित बुद्धि ने सन्देश का अपने अनुकूल अर्थ लगाने में सहायता दी, और उसने सन्देश का बड़ा ही प्रसन्नकारी अर्थ लगाया। उसने तार का अर्थ लगाया कि "विवाह संबंध में गुथ जाओ।" बस वह खुशी से नाचने लगी। उसने अपने प्रियतम से पूछा कि तुम इतने उदास क्यों हो, तुम्हें तो मेरी समझ में खुश होना चाहिए। वह कमरा छोड़कर निकलने वाली ही थी कि प्रेमिक ने पूछा कि वह इतनी जल्दी कहाँ जा रही है। उसने जवाब दिया "जल्दी से विवाह का प्रबन्ध करने के लिए।" इसी प्रकार लोग धर्म-ग्रन्थों से अपना मतलब निकाल लिया करते हैं। ऐसा अर्थ लगाना उस विवाह करने को उत्सुक महिला के लिए तो हितकारी हो सकता है परन्तु धर्म-ग्रन्थों का ऐसा अर्थ करने से काम न चलेगा।

धर्म-ग्रन्थ हमें बतलाते हैं कि 'शरीर ईश्वर का मन्दिर है।' इस वाक्य का बड़ा ही दुरुपयोग किया जाता है। निस्सन्देह यह शरीर ईश्वर का मन्दिर है किन्तु क्या इस वाक्य का यह अभिप्राय था कि मंदिर ही सब कुछ है और भीतर के ईश्वर को भूल जाओ? मन्दिर का अर्थ वह नहीं था जो आजकल रोमन

---

* 'Join' के अर्थ हैं संबंध करना, जो नौकरी और विवाह दोनों पर लागू होता है।

कैथलिकों के मन्दिरों का है। लोग भीतर के ईश्वर को भूल जाते हैं और मन्दिर ही को सब कुछ बना देते हैं।

उस वाक्य का अभिप्राय यही था कि भीतर के ईश्वर की, उस पवित्रतम की पूजा की जाय, और मन्दिर की नहीं।

लोग मन्दिर में प्रवेश करते हैं और उसके भीतर के ईश्वर को भूल जाते हैं। इसलिए जब वे पढ़ते हैं 'शरीर ईश्वर का मन्दिर है' तब वे अर्थ का अनर्थ करते हैं और वाक्य का दुरुपयोग करते हैं और शरीर को पुष्ट करते हैं। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि लोग शरीर का बहुत ख्याल रखना चाहते हैं और अपने मिथ्याभिमान तथा प्रवृत्तियों को बहुत प्यार करते हैं और अपने इन कार्यों के समर्थन में इस वाक्य (शरीर ईश्वर का मन्दिर है) को उद्धृत करते हैं, इसका हवाला देते हैं। उनके मिथ्याभिमान, दुर्बलता और अज्ञान की रक्षा के लिए वह वाक्य एक गढ़-सा बन जाता है।

मूल धार्मिक वचनों का यह एक दुरुपयोग है। यह भी गनीमत है कि वे मन्दिर शब्द का इससे भी अधिक स्थूल प्रयोग नहीं करते। जब किसी एक विद्यार्थी ने यह वचन पढ़ा कि 'शरीर ईश्वर का टेम्पल (टेम्पल का एक अर्थ मन्दिर है तो दूसरा कनपटी) है,' तो उसने पूछा, "ईश्वर के कान कहाँ हैं ?" यह अच्छा है कि वे इस वचन की और भी स्थूल व्याख्या नहीं करते, जो व्याख्या की जा चुकी है, वही काफी स्थूल है।

यदि शरीर ईश्वर का मन्दिर है, तो आपको शरीर को भूल जाना चाहिए, शरीर भूल जाने के लिए ही है। मन्दिर का सर्वोत्तम उपयोग उसे भुला देना ही है, न कि सब तरह के धन-रत्नों के बोझ से उसे लाद देना। भीतर के ईश्वर की चिन्ता कीजिए, मन्दिर अपनी चिन्ता आप कर लेगा।

क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है ? क्या ईश्वर के मन्दिर सर्वत्र

नहीं हैं ? सूर्य ईश्वर का मन्दिर है ? क्या सब नक्षत्र ईश्वर के मन्दिर नहीं हैं ? प्रत्येक वस्तु ईश्वर का मन्दिर है। राम कहता है प्रत्येक वस्तु ईश्वर का मन्दिर है। शरीर ईश्वर का मन्दिर इसलिए है कि वह आपसे अत्यन्त निकट है। प्रत्येक वस्तु आपको ईश्वरत्व की शिक्षा देती है। प्रत्येक वस्तु का मूल्य ईश्वर है। इस सम्बन्ध में राम आपसे एक बात कहना चाहता है ; मानसिक पीड़ा, आन्तरिक व्यथा, चिन्ता या क्लेश से जर्जर सब लोगों को वह स्वर्ग का सन्देश देना चाहता है।

सम्पूर्ण विश्व के विगत इतिहास के पन्नों में ईश्वर ने यह सन्देश भेजा है। ईश्वर यह सन्देश आपके रग-रग में, नस-नस में और मस्तिष्क में भेजता है। प्रत्येक घर और परिवार में भगवान इस सन्देश का प्रचार कर रहा है। इस सन्देश को सुनिए, इस पर ध्यान दीजिए और अपनी मुक्ति प्राप्त कर लीजिए। यदि इस सन्देश पर ध्यान न दिया, इसका अनादर किया तो आप अपने को फाँसी पर चढ़ा लेंगे, मरेंगे, विनष्ट होंगे। अन्य कोई विकल्प नहीं है।

मनुष्य दिन भर में कितनी बार मरता है ? जब आप बहुत भयभीत होते हों या बेकली का बोध करते हों, जभी आप ऐसी भयंकर दशा में होते हों तभी मानो मृत्यु है और तभी आप अन्तस्थ ईश्वर को भूल जाते हैं। इस ओर ध्यान दीजिए और अपने को बचाइए। इसका निरादर कीजिएगा तो शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाइयेगा।

यही विधान है और यह विधान निर्दय, अलंघ्य, गम्भीर तथा बड़ा कठोर है। यह विधान है। सन्देश क्या है ? सुनिए। "जो भी पूज्य होना चाहते हैं वे सूली पर चढ़ने की यातना भोगें।" ईसा ने पहले सूली पर चढ़ने का कष्ट उठाया और बाद को पूजा गया। गौतम बुद्ध ने पहले सूली (अत्यन्त कष्ट) का कष्ट उठाया

और फिर पूजा गया। सुकरात सूली पर चढ़ा (विषपान किया) और आज भी उसका देह पूजी जाती है। ब्रूनो पहले मरा और उसका सम्मान पीछे हुआ। भारतवर्ष में हजारों सिद्ध पुरुष पहले बलिदान चढ़ गये और बाद में वे पूजे गये। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पुरस्कार प्राप्त किया।

यह तथ्य है कि इन सब सिद्धों ने पहले मूल्य चुकाया और बाद में उन्हें पुरस्कार मिला। किन्तु संसार में दूसरे लोगों की क्या दशा है? इस संसार में नर-नारियों की क्या बात है? वे पहले खरीदना तो चाहते हैं किन्तु मूल्य चुकाने से जी चुराते हैं। परन्तु मूल्य उन्हें देना ही होगा।

प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह पूजा जाय। पूजा का अर्थ है प्रेम, आदर और सम्मान। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह प्रेम, आदर और सम्मान पाये। वह चाहता है कि चारो ओर उस पर भक्ति हो। वे अपने चारो ओर चाटुकारों को चाहते हैं। सांसारिकता के इस रोग से, मिथ्याभिमान के इस रोग से, शरीर के प्रति आसक्ति के इस रोग से, इस बद्धमूल रोग से, इस अज्ञान से, जो आपको शरीर में आत्मा का भ्रम कराता है और जिसके कारण आप शरीर ही को अपने अन्दर का सार पदार्थ समझने की भूल करते हैं, और इसी अज्ञान से, जो अपने को पूजे जाने की उत्कट लालसा में बदल लेता है, प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कष्ट पा रहा है उचित मूल्य दिये बिना इस रोग का, पूज्य होने की इस कल्पना का आनन्द भोगा नहीं जा सकता। ईश्वर का यह पवित्र विधान किसी को भी नहीं छोड़ता, न तो ईसा को छोड़ता है और न कृष्ण को। ईसा को इसका मूल्य चुकाना पड़ा—पहले सूली पर चढ़ा फिर बाद में पूजा गया। विधान के अनुसार सुकरात ने पहले मूल्य चुकाया और पीछे वह पूजा गया।

सब सिद्ध पुरुषों ने पहले मूल्य चुकाया और बाद में वे पूजे गये। आप लोगों के नेपोलियन, वाशिंगटन व अन्य महापुरुषों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजे गये। न्यूटन और अन्य महापुरुष अपनी समाधियों में जो रहे हैं। अब भी वे समाधियों में वही जीवन बिता रहे हैं, जो पहले उनका बलिदान का जीवन था। वे शरीर से ऊपर हैं, भूख और प्यास की यातनाओं से ऊपर हैं।

न्यूटन के जीवन-चरित का अध्ययन कीजिए तो देखिएगा कि कितने ही बार वह भोजन करना भूल गया। इन लोगों ने पहले मूल्य चुकाया और पीछे पूजा पायी।

विधान किसी को नहीं छोड़ता। वह व्यक्तियों का आदर नहीं करता, वह पापियों या पुण्यात्माओं, सिद्धों या दार्शनिकों का पक्ष नहीं लेता। यह निष्ठुर तथा निर्दय विधान है। आपको अपने मामले में किसी विशेष व्यवस्था की आशा करने का क्या अधिकार है? अपने शरीरों के लिए विशेष आदर की आशा करनेवाले आप कौन हैं? यदि दूसरों के प्रिय, आदरणीय और सम्मान्य होने की आशा आप करते हैं, यदि दूसरों से आदर पाने और विशिष्ट समझे जाने की इच्छा आप रखते हैं, तो पहले आपको उसके लिये मूल्य चुकाना होगा।

'द ज्यूएस' (यहूदिन) नामक नाटक में 'ज्यूएस' ने 'जोसेफ' द्वारा अपने को पूजा जाना चाहा। ठीक , पहले तुम्हारी ही पूजा सही। उसकी पूजा पहले हुई किन्तु उसका मूल्य उसे चुकाना ही पड़ा। यहाँ तक कि यदि प्रकृति, विधान या ईश्वर आपका आदर करता है और आपके घर कोई वस्तु भेजी जाती है तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसका मूल्य माँगा नहीं जायगा। यदि हमने पहले ही मूल्य दे दिया होता तो बहुत अच्छा होता। लेकिन अब ? अब

तो उसने अपनी हिसाब की बही भेज दी है और मूल्य चुकाने का तकाजा बड़ा जोरदार है।

'ज्यूएस' को 'जोसेफ' ने पूजा और ज्यूएस को मूल्य देना पड़ा। पाँच वर्ष तक वह प्रेमोन्मत्त रही और अपने उन्माद में वह अंट-शंट बकती रही। अज्ञान को दंड भुगतना ही पड़ेगा, मूल्य चुकाना ही होगा।

प्रत्येक उपन्यास या नाटक में जो प्रत्येक नायक की दशा होती है, वही संसार के सम्पूर्ण इतिहास में संघटित होता है। इस तुच्छ अहं से मुक्ति पाना ही विधान है। और तभी आपको समुचित प्यार किया जायगा, अन्यथा कदापि नहीं।

वासनाओं की तृप्ति का उपाय यही है कि वासनाएँ त्याग दी जाँय। फारसी भाषा में एक सुन्दर शब्द है 'मतलब'। इस शब्द का एक अर्थ ता कामना है और दूसरा अर्थ है 'कभी न माँगो'। बड़ा ही विचित्र शब्द है यह। आपमें जो वास्तव कामनाएँ हैं उनकी तृप्ति के लिए उन्हें दूर कर देना चाहिए। कामनाओं से ऊपर उठिए, व्यक्तित्व से ऊपर उठिए, इस तुच्छ शरीर से ऊपर उठिए।

यह एक दीपक है। पतंग दीपक से प्रेम करता है--वे उसे प्यार करते हैं और वे उसके निकट आकर अपनी देहों को उसके लिए भस्म कर देते हैं। एशिया में इस जल जाने को प्रेम का एक लक्षण माना जाता है और लोग कहते हैं कि ये 'पतंगे दीपक से इतना प्रेम करते हैं कि अपने को जला देते हैं।'

वेदान्त कहता है, "नहीं, नहीं। पहले दीपक अपने को जलाता है और तत्पश्चात् प्यार किया जाता है।"

इसी प्रकार शरीर से ऊपर उठिए, अपने इस व्यक्तित्व को भस्म कर दीजिए, इसका दाह कीजिए, इसे नष्ट कर दीजिए और तभी आप अपनी वासनाओं को पूर्ण होते देखेंगे। तभी आप पूजे जायेंगे,

आपकी अभिलाषित वस्तुएँ आपकी पूजा करेंगी। अन्य शब्दों में, "अपना अहं त्याग दो।" इसे कहना तो सहज है किन्तु इसे कार्यान्वित भी करना होगा।

गिर्जों में ही आपको ईश्वर से छुट्टी नहीं मिल जाती और न तो मन्दिरों में और न तो रीति-रिवाजों के पालन से ही आपको ईश्वर से छुट्टी मिलती और स्वाधीनता मिल जाती है। ईश्वर के दरबार में हाजिरी बजाने से ही काम न चलेगा। आपको अपने जीवन के प्रत्येक दिन अपना अहंकार भुला देना होगा। अपने मित्रों के साथ साधारण आचरणों में, बाजार में सौदा खरीदने में, सम्बन्धियों से अपने सम्पर्क में, आपको इसका अभ्यास करना होगा।

पहाड़ा रटनेवाले लड़के को गुणा के नियम सिखाये जाते हैं। गुणा के नियम लड़के के मस्तिष्क में जम जाते हैं और उसे याद हो जाते हैं। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं होता। केवल उसने त्रैराशिक नियम सीख लिया है, उसे तब तक उसका अभ्यास करना होगा जब तक उसका उससे मानों तादात्म्य न हो जाय, जब तक वह उसमें पूरा मँज न जाय। जब तक आप किसी नियम को केवल कंठस्थ किये हुए हैं, वह आपके मस्तिष्क में है और आप प्राय: गलतियाँ करेंगे। गलतियों से आप बच नहीं सकते हैं जब तक आप सैकड़ों-हजारों सवाल हल न कर डालें और उसे उँगलियों के पोरों पर न लगाने लग जायँ। केवल तभी आप विना गलती किये सवाल हल करने के योग्य होंगे।

ठीक यही वात आप बायबिल में पढ़ते हैं "अपने को अस्वीकार करो।" आप उसे उसी प्रकार पढ़ते हैं जिस प्रकार एक लड़का त्रैराशिक सीखता है। किन्तु इससे काम नहीं चलेगा। आपको अपने प्रतिदिवस के परिवेश इसे प्रयोग में लाना होगा, आपको अपना मन इस पर एकाग्र करना होगा, इसको बार-बार कार्यान्वित करना

और इसका अभ्यास करना होगा। अपने को अस्वीकार कर अर्थात् स्वार्थ त्यागकर आपको सवाल लगाना होगा।

बच्चों से बातें करते समय इस नियम का प्रयोग कीजिए। सड़क पर चलते समय अपने अहं का त्याग कीजिए। हँसी-मजाक करते समय इस नियम को लागू कीजिए। इस सवाल को अवश्य लगाते जाइए और उसका परीक्षण करते रहिए। वेदान्त सीखना कोई सहज काम नहीं है। वेदान्त का पाठ सुनाया बड़ी आसानी से जा सकता है किन्तु सीखना अपने आप को ही होगा निरन्तर अभ्यास, भला-बुरा समझने की कुशलता, तथा वेदान्त को हस्तामलकवत्, बनाने की दक्षता प्राप्त करने से काम हलका हो जाता है। जब राम गणित-शास्त्र का अध्यापक था, तब वह गणित के सवाल उतनी ही शीघ्रता से हल कर लेता था जितनी शीघ्रता से वह उन्हें लिखता था। वे बड़ी सरलता से हल हो जाते थे। क्यों? कारण यह था कि राम ने विभिन्न नियमों को इस प्रकार याद कर लिया था कि वे उसकी उँगलियों के पोरों पर मौजूद रहते थे। राम का अभ्यास इतने उत्कर्ष पर था कि १८ अंकों के गुण्य को १७ अंकों के गुणक से गुणा कर क्षण भर में वह उसका गुणनफल बता देता था। कैसे? अभ्यास के कारण। इस प्रकार आपका मन्दिर केवल हृदय में ही न हो। वेदान्त का मन्दिर सड़कों पर, आपके बिस्तर पर, आपके अध्ययन-कक्ष में, आपके भोजन-कक्ष में, और बैठकखाने में है। इन मन्दिरों में आपको रहना और सत्य का अनुभव करना होगा। ये वे स्थान हैं जहाँ आपको अपने सवाल हल करने होंगे।

जब राम बालक था, एक दिन वह सड़क के किनारे एक पुस्तक पढ़ता हुआ जा रहा था। उस रास्ते से एक सज्जन आ रहे थे, जिन्होंने राम से दिल्लगी की। उन्होंने कहा, "तुम यहाँ क्या कर

रहे हो ? यह कोई पाठशाला नहीं है, नौजवान, अपनी पुस्तक अलग रखो।" राम ने उत्तर दिया, "सारा संसार ही मेरी पाठशाला है।" अब राम समझता है कि आपकी पाठशाला क्या होनी चाहिए।

यदि प्रति दिन के जीवन में वेदान्त का अभ्यास नहीं किया जाता तो वह किस काम का ? पुस्तकों में छपा हुआ और कीड़ों से खाये जाने के लिए अलमारी में रखा हुआ वेदान्त काम न आवेगा। अपना जीवन वेदान्त के अनुसार निर्वाह कीजिए।

वेदान्त को लोग अग्नि कहते हैं। यदि वेदान्त हमारी दुर्दशा और कष्ट को दूर नहीं करता तो यह पवित्र अग्नि उस कोटि की भी नहीं है जिस कोटि की यह भौतिक अग्नि है, जो आपका भोजन पकाती है, जिससे आपकी भूख मिटती है और जिससे आपकी सर्दी दूर होती है। यदि वेदान्त आपकी सर्दी नहीं दूर करता, यदि वह आपको सुखी नहीं करता, यदि वह आपके बोझों को दूर नहीं हटाता तो उसे ठोकर मारकर अलग कर दीजिए। आप तभी वेदान्त सीख सकते हैं या वेदान्त को प्राप्त कर सकते हैं जब आप उसे अपने व्यवहार में बरतें

एक समय युधिष्ठिर नामक एक व्यक्ति था। वह भारत के सिंहासन का युवराज था। उसके बालकपन की एक कहानी प्रचलित है। वह अपने छोटे भाइयों के साथ पाठशाला में पढ़ता था। उसके बहुत-से भाई थे। एक दिन प्रधान शिक्षक, परीक्षक उन लड़कों की परीक्षा लेने आये। प्रधानाचार्य ने पूछा कि तुम लोगों ने कहाँ तक पढ़ा है ? बालकों ने जो कुछ पढ़ा था आचार्य के सामने रख दिया। जब युधिष्ठिर की बारी आयी तब फिर गुरुजी ने वही प्रश्न किया और युधिष्ठिर ने पहली पुस्तक खोलकर प्रसन्न स्वर में, बिना लज्जित हुए कहा, "मैंने तो वर्णमाला पढ़ी है, और

पहला वाक्य पढ़ा है।" गुरु ने पहला वाक्य दिखाकर कहा, "बस, इतना ही?" उन्होंने फिर कहा, "और भी कुछ तुमने पढ़ा है?" युवराज ने झिझकते हुए कहा, "दूसरा वाक्य।" राजकुमार ने, उस छोटे बालक ने प्रफुल्लता और प्रसन्नता से यह कहा था। किंतु आचार्यजी क्रुद्ध हो गये। वे तो उस बालक से अधिक विद्या और अधिक बुद्धि का अधिकारी होने की आशा करते थे। उनको घोंघे-जैसी मन्द चाल की आशा युधिष्ठिर से कदापि न थी। आचार्यजी ने उससे अपने सामने खड़े होने को कहा। आचार्यजी बड़े निर्दय प्रकृति के थे। उन्होंने निश्चय किया कि बेंत से काम न लेना लड़के को बिगाड़ना है। आप जानते होंगे कि प्रायः अध्यापकों का यह विचार होता है कि लड़कों पर बेंत तोड़ने से उनका सुधार हो जाता है और जितने ही अधिक बेंत वे लड़कों को पीटने में तोड़ेंगे उतना ही अधिक लड़के सुधरेंगे। मन की इस अवस्था ने गुरु को बड़ा निष्ठुर बना दिया और उसने युवराज को पीटना शुरू कर दिया। किन्तु युवराज शान्त और पहले ही की तरह प्रसन्न बना रहा। गुरु ने कई मिनटों तक उसे पीटा किन्तु उसे युवराज के सुन्दर मुखड़े पर क्रोध या चिन्ता, भय या क्लेश का कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ा। तब युवराज का मुखड़ा देखकर गुरुजी को दया आ गयी। पत्थर भी तो पिघल जाता है! गुरु ने सोचा अपने और मन ही मन कहा, "यह मामला क्या है? क्या बात है कि यह राजकुमार, जिसके एक शब्द-मात्र से मेरी जीविका समाप्त हो सकती है, जो एक दिन मुझ पर और सारे भारतवर्ष पर शासन करेगा, वह इतना शान्त है? मैंने उस पर इतनी निठुरायी का आचरण किया, किन्तु वह मुझ पर रंचमात्र भी क्रोधित न हुआ। मैंने एक समय अन्य भाइयों पर सख्ती की थी और वे क्रोधित हो उठे थे और उनमें से एक ने तो बेंत छीनकर मुझे पीटा था, किन्तु

इस युवराज ने अपना मानसिक संतुलन न खोया। वह प्रसन्न है, शान्त और स्तब्ध है।" फिर गुरु की दृष्टि उस पहले वाक्य पर पड़ी जो युवराज ने पढ़ा था।

आप जानते होंगे कि भारतवर्ष में प्रारम्भिक पुस्तकें कुत्तों और बिल्लियों के वर्णन से नहीं शुरू होतीं। भारत में पुस्तकें ईश्वर और सदुपदेश से शुरू होती हैं। संस्कृत पुस्तक में वर्णमाला के बाद पहला वाक्य था, "कभी क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, कभी क्रोधित मत हो।" दूसरा वाक्य था, "सत्य बोलो, सदा सत्य बोलो।" युवराज ने कहा था कि उसने पहला वाक्य पढ़ लिया है किन्तु दूसरा वाक्य पढ़ने के सम्बन्ध में उसने कुछ हिचकिचाते हुए कहा था। अब आचार्यजी की दृष्टि पहले वाक्य "कभी क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, कभी क्रोधित मत हो" पर पड़ी और फिर उन्होंने राजकुमार के मुँह की ओर देखा। गुरुजी की एक आँख उस वाक्य पर थी और दूसरी राजकुमार पर। तब उस वाक्य का गूढ़ अर्थ उनके मस्तिष्क में कौंध गया।

तब तो युवराज के चेहरे ने वाक्य के अर्थ कह दिये। युवराज का मुखड़ा पुस्तक में लिखे हुए वाक्य 'कभी क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, कभी क्रोधित मत हो' का साकार रूप था। युवराज के शान्त, स्थिर, उज्ज्वल, प्रसन्न, हर्षोत्फुल्ल तथा सुन्दर मुख ने 'कभी क्रोधित मत हो' वाक्य का अर्थ आचार्य के हृदय में जमा दिया।

अब तक तो आचार्यजी इस वाक्य को केवल लाँघ गये थे। उन्होंने वाक्य का सारांश पहले केवल होठों से रट रखा था। अब उन्होंने जाना कि यह वाक्य केवल तोते की तरह रटना नहीं है। इस वाक्य का प्रयोग जीवन में किया जा सकता है, कार्यान्वित

किया जा सकता है। और तभी उन्होंने यह उपलब्धि की कि मेरी विद्या कितनी तुच्छ है। वह अपने मन में लज्जित हुए कि मैंने पहला वाक्य तक ठीक तरह से नहीं पढ़ा है जब कि एक बालक ने उसे वास्तव में पढ़ लिया है। आप जानते हैं कि उस लड़के के लिए कोई विषय का पढ़ना उसे केवल कंठाग्र करना मात्र नहीं था, किन्तु पढ़ने का अर्थ प्रयोग में लाना, कार्यान्वित करना, उपलब्धि करना, उसका बोध होना उसके साथ तादात्म्य बन जाना था। इस बालक के लिए पढ़ने का अर्थ यही था।

ज्योंही आचार्यजी ने शिक्षा का अर्थ समझा, त्योंही उनके हाथ से बेंत गिर पड़ा, उनका हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने बालक को उठाकर अपनी बाहों में बाँध लिया और उसका माथा चूम लिया। साथ ही उन्हें अपनी मूर्खता का और अपनी व्यावहारिक विद्या के अभाव का यहाँ तक बोध हुआ कि उन्हें अपने पर लज्जा आयी। उन्होंने बालक की पीठ थपथपाकर कहा, "बेटा, प्यारे राजकुँवर, मैं तुम्हें कम से कम एक वाक्य पढ़ लेने के लिए बधाई देता हूँ। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि धर्म-ग्रन्थों में से एक वाक्य तुमने यथार्थ रूप से पढ़ लिया है। हाय! मैं तो एक वाक्य भी नहीं जानता, मैंने तो एक वाक्य भी नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे क्रोध आ जाता है, किसी भी तुच्छ बात पर मैं अपना मानसिक संतुलन खो बैठता हूँ। बेटा, मुझ पर दया करो, तुम मुझसे अधिक जानते हो, तुम मुझसे अधिक विद्वान् हो।" जब आचार्यजी ने ऐसा कहा और बालक को उत्साहित किया तो बालक ने कहा, "पिता, पिता, मैंने अभी यह वाक्य अच्छी तरह से नहीं पढ़ा है क्योंकि मुझे अपने हृदय में कुछ क्रोध और क्षोभ का बोध हुआ था। जब पाँच मिनट तक मैं पीटा गया तब मुझे अपने हृदय में क्रोध और क्षोभ के कुछ लक्षण जान पड़े थे।" इस प्रकार वह

दूसरे वाक्य का अर्थ बता रहा था, इस प्रकार वह सत्य बोल रहा था जब कि अपनी आन्तरिक दुर्बलता छिपाने का उसके लिए प्रत्येक प्रलोभन था, ऐसे मौके पर जब कि उसकी प्रशंसा हो रही थी। अपने हृदय की गुप्त दुर्बलता को अपने ही कर्मों से प्रकट कर बालक ने यह सिद्ध कर दिया कि उसने दूसरा वाक्य "सत्य बोलो" भी पढ़ लिया है। अपने कर्मों से, अपने जीवन द्वारा उसने दूसरे वाक्य को भी कार्यान्वित किया।

पढ़ने की यही रीति है, वेदान्त सीखने की भी यही रीति है, वेदान्त पर अमल कीजिए, वेदान्त का अभ्यास कीजिए।

अब राम कहता है कि दूसरा कोई आपका उद्धार नहीं कर सकता। आप अपना उद्धार स्वयं करें, आप अपने ही त्राता हैं। प्रातःकाल जब आप 'ओं' का उच्चारण करते हैं, तब वेदान्त को कार्य में परिणत करने का, वेदान्त के अभ्यास करने का दृढ़ संकल्प कर लीजिए। जिस किसी काम का भार अपने ऊपर ले लें, उसे आरम्भ करने से पहले सावधान हो जाइए। जिस प्रकार नदी में नहाने जाने से पहले आप तैरने की तैयारी कर लेते हैं, उसी प्रकार जब कोई काम आप प्रारम्भ करें, जब आप किसी व्यक्ति से भेंट करने जायँ, जब आप किसी व्यक्ति से मिलने जायँ, तब पहले उस मार्ग पर चलने के उपयुक्त तैयारी कर लें। जिस प्रकार नदी में नहाने जाते समय अपने कपड़े खोल डालते हैं, उसी प्रकार आप अपने पर से मिथ्या अहंकार उतार फेंकिए, इस व्यक्तित्व से, इस ईश्वर के मन्दिर से अपने को नग्न कर डालिए। अपने को मिथ्याभिमान से मुक्त कर लीजिए। ईश्वर का बोध कीजिए, सत्य स्वरूप की उपलब्धि कीजिए और प्रत्येक शरीर में ईश्वर को देखने का संकल्प कर लीजिए। जब आप किसी मित्र

के पास जायँ या कहीं भी जायँ तो तैयार होकर जायँ। और जब आप कोई भी काम करने की तैयारी कर लेंगे, तो आप असफल न होंगे। आप अपना संतुलन बनाये रहेंगे तो कुछ भी खोयेंगे नहीं। जब कोई काम पूरा हो जाय और आप मित्र के घर से लौटें या किसी से भी मिलकर लौटें तो फिर अपने को तैयार कर लें।

यदि आपके हाथ गन्दे हैं तो आप धो डालते हैं। यदि कोई सज्जन या महिला अपने कपड़े पर कोई धब्बा देखती है तो वह झटपट उसे साफ करने लगती है। इसी प्रकार, जहाँ आपका व्यक्तित्व और अहंभाव व्यक्त हुआ था, उन साथियों से अलग होने के उपरान्त, तुरन्त ही आपका पहला कर्त्तव्य यह है कि आप अपने हाथ धो डालिए अर्थात् उनसे निर्लिप्त हो जाइए और फिर ईश्वर बनकर बैठ जाइए।

फिर, जब आप क्रोधित या दुःखित होते हैं, जब आपका संतुलन बिगड़ जाता है, तब आपको क्या करना चाहिए? अपना संतुलन बनाये रखने की उसी पद्धति का अनुसरण कीजिए।

डाक्टर या वैद्य का तराजू हवा लगते ही हिलने लगता है और उसके पलड़े ऊपर-नीचे होने लगते हैं। इसका वे क्या इलाज करते हैं? वे उसे एक शांत स्थान में रख देते हैं और वह समय आ जाता जब पलड़ा अचल और स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार जब आपका चित्त क्षुब्ध या रुष्ट हो जाय तब अपने को एक कमरे में बन्द कर लीजिए और मित्रों का साथ छोड़कर एकान्त में चले जाइए। समय और एकान्त आपको बलवान बना देंगे। ओं का उच्चारण करें और वेदान्त का मनन करें, अपने ईश्वरत्व की उपलब्धि करें और तुरन्त ही आपको अपनी पूर्व अवस्था प्राप्त हो जायगी, आपका संतुलन लौट आयेगा और आप शान्त हो जायँगे।

यदि आप समझें कि आपकी आत्मा क्षुब्ध या रुष्ट है, यदि

आप समझें कि आपका मन विक्षिप्त है, यदि आपके चित्त में क्रोध का विचार, विरोध, चिन्ता या भय भरा हुआ है, तो आपको क्या करना चाहिए ? अरे आपको अपना चेहरा किसी को भी दिखाने का अधिकार नहीं। चेचक के दाग से भरा चेहरा किसी को भी दिखाना नहीं चाहिए। आपको चाहिए कि आप अपने को 'क्वारांटीन' या संसर्ग-शून्य स्थान में बन्द कर लें। आप हैजे से पीड़ित हों, प्लेग से पीड़ित हों, तो आप एक संक्रामक रोग से ग्रसित हैं और समाज में उपस्थित होने का आपको कोई अधिकार नहीं है। पहले आरोग्य प्राप्त कर लीजिए, फिर बाहर निकलिए।

यदि किसी सज्जन या महिला का चेहरा या पोशाक गन्दी हो जाय तो वह समाज में बिल्कुल नहीं जायगी। इसी प्रकार यदि आपका मन मलिन हो गया हो, यदि आप संक्रामक रोग से आक्रान्त हैं, या यों कहिए कि आपकी वास्तविक प्रकृति हैजे से पीड़ित है, तो आप समाज में कदापि न मिलें-जुलें। एकान्त में बैठिए, ओं का उच्चारण कीजिए, ईश्वर का अनुभव कीजिए। जब आप ईश्वर का अनुभव करने लगें, ईश्वर का चिन्तन करने लगें तब आप बाहर निकलिए।

राम आपसे कहता है कि यदि आप इस शक्ति का अनुभव करने लगें, तो आप अपने जीवन में एक विशेष परिवर्त्तन पाइएगा।

लोग फल खाना चाहते हैं, किन्तु वे उस फल के पेड़ को ही काट डालना चाहते हैं। वे सुखी होना और आनन्द उपभोग करना चाहते हैं, किन्तु वे सत्य का जीवन व्यतीत करना नहीं चाहते। सुख-भोग और आनन्द तभी किसी को प्राप्त होते हैं जब वह अपने ईश्वरत्व और दिव्यत्व में रहता है।

लोग चाहते हैं कि इन शरीरों की पूजा हो, वे इन क्षुद्र शरीरों के लिए सब आराम चाहते हैं किन्तु वे मूल्य देने से कतराते

हैं। किन्तु इससे काम न चलेगा। आप शहरों में रहते हुए भी, अपने में इस कठिन साधना का अभ्यास कर सकते हैं; यह सम्भव है; यह आपकी अपनी शक्ति पर ही निर्भर है।

राम आपसे कहता है कि वह भय से, चिन्ता से, क्रोध से ऊपर है किन्तु इसकी प्राप्ति निरन्तर अभ्यास या साधना से ही हुई है। इस अभ्यास ने राम को निर्बलता और अन्ध-विश्वास की गहराई से ऊपर निकाला है। एक समय राम बड़ा ही अन्ध-विश्वासी था, हवा का हर झोंका राम को संतुलन से दूर फेंक देता था। यदि एक व्यक्ति ऐसा कर सकता है तो आप भी कर सकते हैं।

ओं ! ओं ! ओं !



वेदान्त-प्रश्नोत्तरी

[युक्तराष्ट्र अमरीका में २६ फरवरी, १६०३ को दिया हुआ व्याख्यान]

महिलाओं तथा सज्जनों के रूप में मेरे आत्मस्वरूप,

राम आज वेदान्त पर किये हुए कुछ प्रश्नों का उत्तर देगा।

प्रश्न—वह कौन है जो कहता है, "मैं यह देह नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं स्वयं हूँ ?"

उत्तर—सच्ची आत्मा में कोई शब्द नहीं हैं। सच्चे स्वरूप की स्थिति-विन्दु से इस प्रकार की उक्ति कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं यह हूँ या वह हूँ" करने की कोई सम्भावना नहीं है। सच्ची आत्मा तक कोई भी शब्द नहीं पहुँच सकते, आत्मा सभी शब्दों से ऊपर स्थित है। इस प्रकार यह उक्ति "मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं ईश्वरत्व हूँ" आत्मा द्वारा नहीं की जा सकती क्योंकि आत्मा सब शब्दों से ऊपर है। यह उक्ति, बुद्धि (सूक्ष्म शरीर) या किसी दूसरे नाम से आप उसे पुकारें, उसके द्वारा की जाती है। प्रश्न यह है कि यदि मन यह उक्ति करे कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ईश्वर हूँ" तो उसका कथन न्यायसंगत नहीं है क्योंकि उसका मन या उसकी बुद्धि तो ब्रह्म नहीं है। वेदान्त कहता है कि एक दृष्टिकोण से मन और बुद्धि ब्रह्म नहीं है किंतु दूसरे हिसाब से मन और बुद्धि ब्रह्म के सिवा कुछ और नहीं है। जिस प्रकार से जब हम कहते हैं कि 'काला साँप एक रस्सी है' तो यहाँ 'रस्सी' शब्द साँप के उसी प्रकार गुण नहीं प्रकट करता जिस प्रकार शब्द 'काला' साँप का गुण प्रकट करता है। वैसे साँप काला है। यहाँ पर गुण 'काला'

साँप का है, किंतु जब कहा जाता है कि साँप रस्सी है, तब रस्सी साँप का गुण नहीं होती। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि मन, शरीर या बुद्धि, ब्रह्म या आत्मा है, तब ब्रह्म या आत्मा, मन, शरीर या बुद्धि के गुण नहीं होते हैं। एक अर्थ यह है कि मन, बुद्धि या शरीर अपने वाह्य स्वरूप का त्याग करता है और ईश्वर या आत्मा को पा जाता है। इसलिए जब हम कहते हैं "मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वरत्व हूँ" तो यह अर्थ नहीं होता कि ईश्वर मेरा एक गुण है। जैसे कि जब हम कहते हैं 'मैं सम्राट हूँ' तो सम्राट हमारा एक गुण होता है, किंतु ईश्वर मेरा गुण नहीं है। यह कथन "मैं ईश्वर हूँ" वैसा कथन नहीं है जैसा 'साँप काला है'। "मैं ईश्वर हूँ", यह कथन यदि ऐसा कथन होता जो ईश्वर को आपका गुण बनाता, तो यह कथन अधार्मिक होता, किंतु वास्तव में, "मैं ईश्वर हूँ" इस उक्ति का अर्थ है कि वाह्य स्वरूप को माया-मात्र अनुभव करना चाहिए और सच्ची आत्मा को उसके पूर्ण रूप में व्यक्त करना चाहिए। अरे! 'ईश्वर मैं हूँ'।

ऐ संसार के लोगों, यदि आप मुझे राम या स्वामी कहते हैं, या किसी अन्य नाम से पुकारते हैं तो आप भ्रम में हैं। मैं ईश्वर हूँ, मैं यह शरीर नहीं हूँ।

एक व्यक्ति निद्रित था और नींद में उसे जान पड़ा कि वह चोर के रूप में पकड़ लिया गया है, वह भिखारी बन गया है, वह बड़ी ही दुर्दशा में है। अपने स्वप्न में उसने हर प्रकार के देवताओं से सहायता के लिए प्रार्थना की, वह कभी इस न्यायालय में गया कभी उस न्यायालय में, वह कभी इस वकील के पास गया कभी उस वकील के पास और उसने सहायता माँगी किंतु सहायता न मिली। उसे जेल में डाल दिया गया और वह बहुत रोता रहा किंतु कोई सहायता न मिली। एक साँप ने आकर उसे काट खाया

और उसे असह्य वेदना हुई। यह पीड़ा इतनी तीव्र थी कि इसने उसे जगा दिया। निद्रितावस्था में जिस सर्प ने उसे काटा था उसको उसे धन्यवाद देना चाहिए था। जब कभी हम स्वप्न में विषादपूर्ण या भयंकर वस्तु देखते हैं, जब भी हम दुःस्वप्न देखते हैं, हम जाग जाते हैं। सो स्वप्न में जब सर्प ने उसे जगा दिया तो उसने अपने को बिस्तर पर ठीकठाक बैठा पाया, अपने परिवार से अपने को घिरा हुआ पाया और वह सुखी था। अब हम कहते हैं कि स्वप्न में वह बन्धन दशा में था और उससे मुक्ति का प्रयास कर रहा था कि स्वप्न में ही सर्प ने आकर उसे काटा। यह सर्प भी स्वप्न में देखी हुई अन्य वस्तुओं की तरह था, फर्क केवल यह था कि सर्प ने उसे जगा दिया, चौंका दिया। वह उसे लील गया। हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि साँप उस मनुष्य को लील गया बल्कि उसने उस मनुष्य के स्वप्नदर्शी अहं को खा लिया। यह स्वप्नदर्शी अहं स्वप्न में देखी अन्य वस्तुओं के समान था। इस सर्प ने न केवल उस व्यक्ति के स्वप्नदर्शी अहं को नष्ट कर दिया बल्कि स्वप्न की अन्य सब वस्तुओं को भी जेलखाना, जेल-अधिकारी, वन्दीगृह-रक्षक, सिपाही और बाकी सबको मिटा दिया। लेकिन यह सर्प एक अद्भुत सर्प था, इसने बड़ा ही विलक्षण कार्य किया, इसने अपने आपको भी खा लिया क्योंकि जब वह मनुष्य जागा तब उसने उस विचित्र सर्प को नहीं देखा।

वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण संसार जिसे आप देखते हैं, केवल स्वप्न-मात्र है, माया है; और स्वप्न देखनेवाले आप क्या हैं? आप स्वप्नदर्शी अहं हैं; आप स्वप्नदर्शी अपराधी या चोर हैं। और जिनसे आप सहायता की प्रार्थना करते हैं, जिन स्वर्ग और नरक के सब देवताओं से आप सहायता की प्रार्थना करते हैं और वे

आपको मुक्ति नहीं दिला सकते, वे सब अन्य लोग आपके ही समान, आपके कारागार के साथी हैं। आप सहायता माँगने अपने मित्र के पास जाते हैं किन्तु वहाँ शान्ति नहीं है, सच्ची सहायता नहीं है। सच्चा और प्रकृत आनन्द आपको उस समय तक नहीं मिलता जब तक आप अपने को सर्प से काटा हुआ नहीं पाते हैं। अब, वह सर्प क्या है ? त्याग का सर्प। त्याग आपको सर्प-सा लगता है और आपको काट लेता है। त्याग शब्द आपको भयंकर-सा लगता है और वह आपको डंक-सा चुभो देता है। सच्चे त्याग का अर्थ है ज्ञान और उसका अर्थ है वेदान्त।

जब यह सच्चा त्याग आता है तब पीछे-पीछे वह आता है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ" इस महान वाक्य की उपलब्धि हो जाती है। यहाँ यह कथन, "मैं ब्रह्म हूँ, आत्मा हूँ" अमरीकियों और योरोपियों के कानों में फुफकारती आवाज़ के समान सुनायी पड़ता है। यह फुफकारता हुआ सर्प है जो आपको डस लेगा और आप कहते हैं, "भाई वाह, ऐसा असंगत विचार का पोषण मैं कैसे कर सकता हूँ, इतनी असंगत बातें मैं कैसे कर सकता हूँ ?"

ऐ लोगों, साँप से अपने को कटवा लो; इसके डंक और दंशन वरणीय हैं। वे आपको मुक्ति दिलायेंगे, सभी चिन्ता और क्लेश से मुक्ति दिला देंगे। यह सत्य आपके अन्दर गरल नहीं डालेगा, यह आपमें अमृत डालेगा, और आप जाग उठेंगे, स्वप्नदर्शी अहं अदृश्य हो जायगा और यह संसार भी गायब हो जायगा।

राम जिसकी चर्चा कर रहा है वह कोई अनुमान नहीं है किन्तु सत्य अथवा तथ्य है जिसे आप अपने ही अनुभव से परीक्षा कर सकते हैं। सभी दर्द, क्लेश, उत्कंठा का तुरन्त लोप हो जाता है। 'मैं यह शरीर हूँ' यह कथन स्वप्न में चोर का होता है, क्योंकि

आपने ईश्वर को चुराया है, आपने सत्य को चुराया है, आपने अपने सच्चे स्वरूप को चुराया है, इसलिए आप स्वप्न में चोर हैं और इस चोर को स्वप्न में सत्य-रूपी सर्प डस लेता है और वह सत्य "मैं आत्मा हूँ" है। इस तरह स्वप्न में चोर को 'मैं आत्मा हूँ' का प्राण-दायक दंशन प्राप्त होता है और इसका परिणाम यह होता है कि आप जाग पड़ते हैं तथा सच्ची आत्मा अपनी पूर्ण गरिमा से प्रोज्ज्वल होती है और यह आत्मा अनतिगम्य है। वह वर्णनातीत है, भाषा इसे पहुँच नहीं सकती है।

प्रश्न—यदि मृत्यु जीवित की निद्रा के समान है, तो क्या इसका अर्थ यह है कि उस समय मृत्यु के प्रदेश में क्या हो रहा है, इसे हम नहीं जानते ?

उत्तर—जब आप मृत्यु की नींद का आनन्द लेते हैं तब आप अपने ही सृजित संसार में निवास करते हैं। जाग्रतावस्था में भी आप अपने सृजित संसार में ही रहते हैं, आप अपने आसपास के क्षुद्र और तुच्छ संसार में रहते हैं। इस प्रकार मृत्यु की निद्रा में आप अपने ही सृजित संसार में निवास करते हैं और इस प्रकार मृत्यु की निद्रा का जाग्रतावस्था के संसार से वही सम्बन्ध है जो स्वप्नलोक का जाग्रत-अवस्था से है।

प्रश्न—चूँकि आत्मा को विश्राम की आवश्यकता नहीं है, वह कौन है जो सोता है ?

उत्तर—आत्मा या प्रकृत ईश्वर कभी नहीं सोता। निद्रा सच्चे स्वरूप को स्पर्श नहीं कर सकती। यह निद्रित अवस्था तथा जाग्रत आवस्था भी, वेदान्त के अनुसार, माया अथवा भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है। निद्रा केवल मन को या मिथ्या अहं को आती है। निद्रा केवल असत्य, वाह्य स्वरूप, या सूक्ष्म शरीर से

अपने को युक्त करती है। निद्रा आपके मिथ्या अहं, माया, स्वप्न तथा भ्रम का एक रूप है।

प्रश्न—क्या माध्यमों (Mediums) को अर्थात् जिन पर भूत-प्रेत आदि आते हैं, मृत-आत्माओं से संदेश मिलते हैं ?

उत्तर—राम कहता है कि जाग्रतावस्था में भी जितने सन्देश आपको मिलते हैं वे सब आपके अभ्यन्तर से ही मिलते हैं। आपकी जाग्रत-अवस्था में जो वस्तुएँ आपको बाहर से प्रगट होती, दरसती हैं वे आपके भीतर हैं। सम्मोहित, मुग्ध और माध्यम बनने की अवस्था में भी हर वस्तु आपके अभ्यंतर से ही आती है। विश्व के गोचरभूत व्यापार के सम्बन्ध में वेदान्त सारा जोर आपकी सच्ची वास्तविकता के तथ्य पर देता है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, ठोस प्रतीत होनेवाला सम्पूर्ण संसार केवल आपकी ही सृष्टि है। लाखों ऐसी आत्माएँ आपके भीतर हैं । कुछ भी आपसे अलग नहीं है, बाहर नहीं है ।

हाफिज नामक संसार के एक श्रेष्ठतम कवि की, जिसकी रचना-ओं का इमर्सन ने आंशिक रूप से अनुवाद किया है, लिखी हुई फारसी भाषा में एक सुन्दर कविता है । अनुवाद करने पर उसका अर्थ यों होता है —"ऐ मन, अपना सब अविश्वास और तर्क-वितर्क दूर कर दे। आ, मेरे लिए उस लाल मदिरा का पात्र ला जो मुझे स्वर्ग का द्वार खोलने की चाभी दे दे। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि आपको बैकस (Bacchus) नामक मदिरा-देव का भक्त बन जाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि हमें वह सुरा, ईश्वरत्व की सुधा प्राप्त करना चाहिए, हमें ऐसी कोई वस्तु चाहिए जो दैवी उन्माद की सृष्टि करे। हमें साँप का वह दंशन चाहिए जो बेचारे चोर को स्वप्न से जगा देता है। और इसी प्रकार से स्वर्ग का द्वार खुलता है।

इसलिए, राम कहता है कि कुछ देर के लिए इन वासनाओं और प्राप्ति की इच्छाओं को दूर हटाइए और राम के साथ दैवी उन्माद का आनन्द लीजिए। राम की वाणी अवश्य प्रकट होगी, अपने हृदय को वह अवश्य उन्मुक्त करेगा। आपकी वासनाओं और विचारों का लिहाज़ वह अब नहीं रख सकता और न आपकी रुचियों को बढ़ावा दे सकता है।

ऐ अमरीका और समस्त संसार के लोगों ! सत्य यह है कि आप ईश्वर और धनदेवता कुबेर (Mammon) दोनो की सेवा नहीं कर सकते, आप दो प्रभुओं की नौकरी एकसाथ नहीं कर सकते, संसार का भोग करने के साथ-साथ आप सत्य की उपलब्धि नहीं कर सकते।

इस प्रकार सम्पूर्ण सत्य की प्राप्ति के लिए आपको सारी सांसारिक वासनाओं से मुक्त होना होगा, आपको सांसारिक राग-द्वेष से ऊपर उठना होगा, समस्त ग्रन्थियों और बन्धनों से आपको विदा लेना होगा, समस्त दासता और लगावों से अन्तिम नमस्कार करना होगा। आपको अवश्यमेव इन सब से ऊपर उठना होगा। यही इसका मूल्य है और जब तक आप यह मूल्य नहीं चुकाते, आप सत्य की उपलब्धि नहीं कर सकते। यदि आप मूल्य चुकाने को तैयार नहीं हैं तो उस कठिन दुर्दैव से सन्तुष्ट रहिए जो आपको झेलना होगा। यदि आप आत्मोपलब्धि चाहते हैं, ईश्वर-चेतना चाहते हैं तो कृपया आइए, मूल्य चुकाइए और आपको सब कुछ प्राप्त होगा। ईसा ने बिना झिझक के ये शब्द कहे थे। ऐ लोगों, आजकल इन शब्दों को कैसा तोड़ा-मरोड़ा जाता है, उन्हें एक विशेष अर्थ देने के प्रयास में ये शब्द कैसे उमेठे जाते हैं कि श्रोता लोग भी तंग आ जाते हैं। हाय, इन उपदेश-वाक्यों पर भी कितना अत्याचार होता है !

यह बात राम को एक कहानी की याद दिलाती है। भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध, सत्य से पूर्ण, ईश्वरत्व से उन्मत्त व्यक्ति था। वह सड़कों पर जोर से चिल्ला-चिल्लाकर चलता था, "ऐ ईश्वरत्व के खरीदारों, आओ।" वह ईश्वरत्व बेचता हुआ इधर-उधर जाता था। "अरे ईश्वरत्व के खरीदारों, ऐ ईश्वर-चेतना के अभिलाषियों, आओ। अरे, ओ बोझ से लदे हुओ आओ। वह अपने देश की भाषा में चिल्लाता था और उस भाषा में ईश्वर को 'नाम' कहते हैं। वह अपनी भाषा में चिल्लाता था, "नाम ले लो" जिसके शब्दार्थ हैं, "मुझे एक वस्तु बेचना है, ऐ लोगों, उसे खरीद लो, वह वस्तु ईश्वर है।" वह 'नाम' शब्द का प्रयोग करता था। 'नाम' शब्द के उस भाषा में दो अर्थ हैं, एक अर्थ है ईश्वर और दूसरा अर्थ है सुन्दर जड़ाऊ हार। किन्तु वह सन्त 'नाम' शब्द को ईश्वर के अर्थ में व्यवहार करता था, आभूषण के अर्थ में नहीं। एक दिन जब वह 'नाम' बेचता हुआ सड़क पर से चला जा रहा था तो एक सज्जन ने, जो एक भव्य हार खरीदना चाहते थे, उसे सड़कों पर चिल्लाते हुए सुना और उसने सोचा कि यह आदमी अवश्य किसी महाजन का दलाल होगा और हार बेचना चाहता है। जब भारतवर्ष में लोग विवाह करनेवाले होते हैं तब बहुधा वे अपने को या अपनी दूल्हनों को आभूषित करने के लिए बहुमूल्य आभूषण चाहते हैं। उस व्यक्ति ने उस फेरीवाले या सन्त का पता पूछा और उसके घर गया और चकित रह गया। फेरीवाले का घर बड़ी ही दीन दशा में था और वह आश्चर्य करने लगा कि नाम बेचनेवाला इतना दरिद्र कैसे हो सकता है। वह मकान के अन्दर दाखिल हुआ पर वह फेरीवाला उसे न मिला। उसने दरवाजा खटखटाया तो एक छोटी-सी प्यारी बच्ची निकल आयी। उसने मकान-मालिक के बारे में पूछा तो बच्ची ने जवाब दिया, "मेरे पिताजी बाहर गये

हुए हैं और शाम को लौटेंगे। क्या आप मुझे बतलाने की कृपा करेंगे कि आपको उनसे क्या काम है ? बच्ची की बात से वह बहुत ही प्रभावित हुआ और उससे बातचीत करनी चाही। उससे वार्त्तालाप करने के अभिप्राय से उसने कहा कि मैं नाम खरीदना चाहता हूँ। बच्ची मुस्कराई और बोली, "यह तो बड़ी ही सहज बात है, मैं आपको 'नाम' दे सकती हूँ।" उसने कहा, "अच्छी बात, मैं ठहरता हूँ।" वह दरवाज़े के पास ठहरा रहा और बच्ची भीतर चली गयी। वह बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा और वह अपना धीरज खोने ही वाला था क्योंकि वह बीस मिनट से प्रतीक्षा कर रहा था। उसने सोचा कि खजाना ज़मीन से खोद कर निकालने के लिए यह समय काफी था। धीरज हारकर उसने घर के भीतर झाँका और देखा कि वह बच्ची अपनी बड़ी छुरी पर सान धर रही है। उसने कहा, "इसका क्या मतलब है ?" उसने उस बच्ची से कहा, "बच्ची, तू बच्चों का खेल क्यों खेल रही है ? मुझ-जैसे भद्र पुरुष से खिलवाड़ करने का यह अवसर नहीं है; यदि तुम्हें यह पता नहीं चलता कि तुम्हारे माता-पिता ने कहाँ जेवर गाड़ रखा है, तो बाहर आकर बतलाओ।" किन्तु बच्ची बोल पड़ी, "मुझे कृपया क्षमा कीजिए, धीरज धरिए और एक मिनट रुकिए, मैं अभी आ रही हूँ।" उसने कहा, "तो सीधी बच्ची, चली आओ, छूरी पर धार चढ़ाने की क्या जरूरत है।" उसने कहा, "क्या आप नाम लेना नहीं चाहते ?" उसने जवाब दिया, "मैं नाम तो लेना ही चाहता हूँ। किन्तु वह मुझे दिखाओ भी तो ताकि मैं उसे किसी महाजन के पास ले जाकर उसका मूल्य तो, जान लूँ।" तब उस बच्ची ने कहा, "हमारा नाम ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका मूल्य जौहरी या महाजन लगा सके। हमारे अमूल्य नाम का मूल्य पहले ही से निश्चित है। उसमें घटाने या बढ़ाने का कोई

काम नहीं है। मूल्य पहले ही से निश्चित और निर्धारित है।" उसने कहा, "सचमुच ? ऐसी बात हो तो वह मुझे दिखाओ और अपनी छूरी फेंक दो।" बच्ची ने कहा, "अरे! किन्तु पहले आपको मूल्य चुकाना होगा और बाद को आपको नाम मिल सकता है।" उसने कहा, "क्या मुझे चाकू मारने का इरादा है तुम्हारा, तुम अपना छूरा तेज़ क्यों कर रही हो ?" उस बच्ची ने बहुत ही विश्वसनीय तथा पवित्र ढंग से कहा, "यदि आप नाम का मूल्य नहीं जानते थे तो आप यहाँ आये क्यों ? क्या आप नहीं जानते कि नाम पाने के लिए आपको अपना जीवन देना होगा ? नाम का मूल्य जीवन है जो आपको देना होगा। जो अपने जीवन को बचाएगा वह नाम को खोएगा।"

अरबी भाषा में एक पद्य है "मू तू क़िबलंतु मू तू" जिसका अर्थ है, "क़ब्र में रखे जाने से पहले तुम मर जाओ और ऐसा करके इस संसार को स्वर्ग बना दो।" संस्कृत में बहुत-से श्लोकों की रचना हुई है जिनमें इसी तथ्य का वर्णन किया गया है।

जब आपकी सम्पूर्ण सत्ता संसार से पृथक हो जाती है, जब आप क्लेश का सहन कर लेते हैं, जब आप सूली पर बिंध जाते हैं और संसार के लिए मृत-तुल्य हो जाते हैं, तभी आप जीने लगते हैं। किन्तु उपदेशकों और शिक्षकों की चाटुकारी भरी उक्तियों से धोखा मत खाइए। राम आपसे सत्य कहता है, वह चाटुकारी नहीं करता। वेदों में एक सुन्दर संस्कृत श्लोक है जिसका अर्थ है:—

मनुष्य का शरीर एक दुर्ग के समान है और इन्द्रियाँ छिद्र हैं। दुर्ग के छिद्रों में हम तोप और बन्दूकें रखते हैं जो भीतर से दगती हैं और बाहर दागती हैं। इसी प्रकार आप दृष्टि के गोले दर्शकों के

हृदयों और सिर पर फेंकते हैं, कान के छिद्रों के द्वारा विचार दागते हैं। वह पद्य यों कहता है कि इस दुर्ग के निर्माता आत्मा ने मनुष्य से बड़ा ही रसीला मजाक किया है। जितने भी गोले बाहर दागे जाते हैं, वे सब आपके भीतर से दगते हैं किन्तु मनुष्य भौचक्का हो जाता है। मनुष्य सोचता है कि वह संसार को जीत रहा है और उसे अपने अधिकार में कर रहा है। मनुष्य सोचता है कि वह अपनी सम्पत्ति बढ़ा रहा है किन्तु वास्तव में वह अपना स्वरूप ही खो रहा है। इस दुर्ग में मनुष्य समझता है कि वह ज्ञान लाभ कर रहा है, कि वह संसार का विजेता है किन्तु वास्तव में वह अपनी सच्ची आत्मा को भूखों मार रहा है। इस जगह वह पद्य कहता है, "वही सारे संसार को जीतता है जो अपनी तोप और बन्दूकों के मुँह फेरकर भीतर की ओर दाग सकता है, जिसकी आँखें बाहर देखने के बदले अन्दर की ओर देखती हैं और दृष्टि के उद्गम को देखती हैं, जिसके कान पलटकर श्रवण-शक्ति के स्रोत को सुन सकते हैं, श्रवण-शक्ति का वह मूल जो कि आत्मा है, उसे सुन सकते हैं, जिसका मन अन्दर झाँककर अपनी कर्मण्यता, तेज और शक्ति के स्रोत को देख सकता है।

भीतर देखिए। वह क्या है जो नेत्रों को दृष्टिशक्ति देता, कानों से सुनाता और केशों को बढ़ाता है? वह आत्मा है, ईश्वर है। यह कितनी सरल बात है। यदि इस सत्य पर क्षण भर भी आप विचार करने का प्रयास करें तो आप देखेंगे कि आप ईश्वर के सिवा कुछ और नहीं हैं। उस ईश्वर को अपने भीतर अनुभव कीजिए और विश्व-ब्रह्मांड के स्वामी, संचालक और सम्राट बन जाइए। किन्तु यह जीवन बूढ़ा हो जाता है और मृत्यु आ जाती है। बीज को प्रस्तुत रखना चाहिए जिससे उसकी वृद्धि हो। दीपक को जगमगाने के लिए जलना चाहिए। इसी तरह ईश्वर के समान

रहने के लिए तुच्छ अहंकार, मिथ्या अहं और बहिर्गामी प्रवृत्ति का रुकना आवश्यक है। क्या यह हमें कहानी से दूर भटका देगा? लड़की ने कहा, "महाशय, क्या आप नहीं जानते थे कि मूल्य पहले ही से निर्धारित है? नाम (लड़की के लिए नाम का अर्थ ईश्वर था और उस सज्जन के लिए उसका अर्थ हार था) प्राप्त करने के लिए इस छूरी से आपका यह सिर काटना चाहिए और तभी आपको नाम मिल सकता है।" उस लड़की ने बेफिक्र, सानन्द और बेखटके यह बात कही। बेचारा ग्राहक इतना भौचक्का हो गया और उसने इतना गुल मचाया कि सब पड़ोसी जमा हो गये। उसने शिकायत शुरू की। उसने कहा, "देखिए इस कुटिया में कसाई और नरघाती रहते हैं। यह मामला अदालत में ले जाना चाहिए और हमें पुलिस बुलाना चाहिए।" किंतु लोगों ने कहा, "ऐसी बातें न कीजिए, लड़की के माता-पिता अपनी महान् धार्मिक वृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं।" किन्तु उसने कहा, "मुझे जान पड़ता है कि ये सब पवित्र लोग साधारणतः बड़े खराब हैं, वे धार्मिक नहीं हैं, धर्म के भेस की ओट में वे धार्मिक पापाचरण करते हैं।" उन लोगों की बातचीत से बड़ा गुल-गपाड़ा हुआ और गड़बड़ी फैली और इतने में अचानक लड़की का पिता वहाँ आ पहुँचा और यह आदमी लड़की के पिता का गला घोंट देने को हुआ। धार्मिक पिता शान्त और गम्भीर था। जब उस विचित्र खरीदार ने बड़ी ही रूखी भाषा में उसे सम्बोधन करके कहा, "तुम अपनी बच्ची को भी ऐसा घृणित अपराध करना सिखाते हो, तुम नित्य ऐसे बुरे कर्म क्यों करते हो कि जिनसे तुम्हारे बच्चे शैशव-काल में ही नरघाती बन जाते हैं!" साधु ने उत्तर दिया, "बात क्या है महाशय, आपका अभिप्राय क्या है?" सारा मामला बताया गया और जब साधु ने सारी कहानी सुनी तो उसका हृदय भाव से भर गया, उसका सारा अस्तित्व पवित्र भावनाओं से

हर्षपूर्ण हो गया, उसकी आत्मा ईश्वरत्व से ओतप्रोत हो गयी, उसके गालों पर बड़े-बड़े मोतियों-जैसे आँसू की बूँदें आ गयीं और उसने कहा, "ऐ महात्माओं और सन्तों, ऐ देवदूतों, हे भगवान ! क्या मामला यहाँ तक गिर गया है ? क्या शिर-जैसी तुच्छ वस्तु के बदले में 'नाम' अर्थात् ईश्वर प्राप्त किया जायगा ?" अपनी लड़की की ओर संकेत करते हुए उसने कहा कि एक निर्दोष, अज्ञान बच्ची ने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है, इसी से नाम अथवा ईश्वर इतना हास्यास्पद रूप से सस्ता हो गया है, इसी से ईश्वर का नाम, स्वर्ग और अमरत्व, सिर या हृदय-जैसी निम्न वस्तुओं के मूल्य पर गिर कर बिक रहा है। ऐ ईश्वर, ऐ मधुर अमरता ! यदि तू एक जीवन-मात्र के मूल्य पर प्राप्त हो तो क्या महँगा है ? उस वास्तवता की एक झाँकी के लिए लाखों जीवनों का जन्म और नाश होने दो। उस पवित्र ईश्वर-चेतना के लिए अगणित जीवन और अगणित शिरों को खंड-खंड हो जाने दो।

जब महात्मा ने ये शब्द कहे तब अनोखे खरीदार का हृदय द्रवित हो गया और आसपास खड़े सभी लोग आश्चर्य-चकित हो गये। तब उन्हें जान पड़ा कि वह शब्द 'नाम' उस छोटी लड़की और उसके पिता-माता के लिए कोई अनुपम मधुर अर्थ रखता है और हमारे मन भौतिक पदार्थों में इस तरह ओतप्रोत हैं कि सच्चे अर्थ नहीं ग्रहण करते।

यह कथा आपको उस मूल्य के बारे में बताती है जो आपको स्वर्ग का मधुर अमृत चखने के लिए देना चाहिए। आत्मोपलब्धि का स्थिर अनिवार्य मूल्य वह आपको बताती है।

आप संसार को भोग नहीं सकते, आप अधम, तुच्छ, क्षुद्र, सांसारिक, शारीरिक इन्द्रिय-सुख की इच्छाओं में प्रवेश करने के साथ-साथ परमेश्वर-अनुभव का दावा नहीं कर सकते।

यह जवाहिरात की दुकान है और इस रत्न, इस लक्ष्य तथा इस स्वर्ग के लिए आपको अपना सिर तथा अपनी नीची प्रकृति को मूल्य-स्वरूप देना होगा। यदि आप मूल्य नहीं दे सकते तो दूर हो जाइए। यदि आप उस पूर्ण ज्ञान का आनन्द नहीं ले सकते तो उसका एकमात्र कारण यह है कि आप उसका मूल्य नहीं देते। इसलिए मूल्य दीजिए और उसी क्षण आपको उस परमानन्द का अनुभव होगा।

एक व्यक्ति गिर पड़ा और उसके पैरों में चोट आ गयी। वह गुरुत्वाकर्षण को दोष देने लगा और चिल्लाकर बोला, "ऐ गुरुत्वाकर्षण के पाजी नियम, तूने मुझे गिराया।" तो, गुरुत्वाकर्षण का नियम निकाल बाहर किया जाने की अपेक्षा लाखों मनुष्यों का गिरना और पैर तोड़ लेना बेहतर है। गुरुत्वाकर्षण से मत लड़िए बल्कि सावधानी से अपने पग धरिए और आप गिरेंगे नहीं। आपका यह गिरना, आपकी ये चोटें, आपके सब आघात, आपकी सब चिन्ताएँ और परेशानियाँ आपके भीतर की किसी दुर्बलता के कारण हैं। उसे दूर कीजिए, परिस्थितियों से मत लड़िए, अपने साथियों को दोष मत दीजिए, दूसरों पर कलंक मत थोपिए, किन्तु अपनी दुर्बलता को दूर कीजिए। मन में यह समझ लीजिए कि जब भी आप गिर पड़ें, कष्ट पावें या परेशानी का सामना करें, तो उसका कारण आपके भीतर की कोई दुर्बलता है। इसे याद रखिए और गुरुत्वाकर्षण से मत लड़िए।

यह आभ्यन्तरिक दुर्बलता क्या है? यह अज्ञान की अँधेरी कालिख है जिसके कारण आप अपने को देह या इन्द्रियानुभूति समझते हैं। इससे अपने को मुक्त करो, इसे दूर करो और तब आप स्वयं शक्ति-स्वरूप बन जाते हैं। आपको अपनी प्लीहा या यकृत का बोध कब होता है? जब वह कुछ बिगड़ जाती है, तभी आपको

प्लीहा या यकृत का बोध होता है। आपको अपने फेफड़े का बोध कब होता है? जब वह कुछ बिगड़ जाता है तभी आपको फेफड़ों का बोध होता है। जब नाक ठीक होती है, तब आप उसका बोध नहीं करते।

इसी प्रकार से जब आप अपने शरीर का बोध करते हैं तब उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें कोई रोग है। पूर्ण स्वस्थ अवस्था में आप अपने को साहसी और शक्तिशाली पाते हैं, अपनी देह या अपने व्यक्तित्व का बोध आपको नहीं रहता, उस दशा में आप इस विडम्बना, इस मिथ्या स्वरूप से ऊपर होंगे, आप इस तुच्छ देह के अन्धविश्वास से ऊपर होंगे। आपके लिए यह सम्पूर्ण संसार आपकी देह होगा और जिस क्षण आप उस दशा में हों, परमानन्द आपके लिए है और आप इस वस्तु या उस वस्तु किसी के लिए भी किसी अभिलाषा का अनुभव नहीं करेंगे। यह दुर्बलता ही आपके ठोकर खाने का कारण है, यह दुर्बलता और यह अविद्या ही आपको शरीर का बोध कराती है।

एक ऋषि से यह प्रश्न किया गया था, "यह क्या बात है कि जब ईसामसीह को क्रास पर बिंधा गया उसे उसका दर्द अनुभव न हुआ?" उस समय उस ऋषि के आस-पास कुछ नारियल पड़े थे। भारतवर्ष में जब लोग मित्रों या साधु-सन्तों से भेंट करने जाते हैं तो सदा अपने साथ कुछ फल ले जाते हैं और ये नारियल इसी प्रकार से उस ऋषि के पास लाये गये थे। एक नारियल कच्चा था और दूसरा सूखा हुआ था। ऋषि ने कहा, "यह नारियल कच्चा है। यदि मैं इसे तोड़ूँ तो इसके गूदे का क्या हाल होगा?" उन्होंने कहा, "इससे गूदा भी कटकर टूट जायगा और उसे हानि पहुँचेगी।" फिर ऋषि ने कहा, "अच्छा यह सूखा नारियल है और यदि मैं इसका खोपड़ा तोड़ दूँ, तो इसके गूदे का क्या हाल

होगा ?" उन लोगों ने कहा, "यदि नारियल का खोपड़ा तोड़ा जाय तो उसके गूदे को कोई हानि न पहुँचेगी, उसमें कोई चोट न आयेगी।" उसने कहा, "क्यों ?"उन लोगों ने जवाब दिया, "सूखे नारियल में गूदा अपने को खोपड़े से अलग कर लेता है और कच्चे नारियल में गूदा खोपड़े से जुड़ा रहता है।" तब ऋषि ने कहा, "जब ईसामसीह क्रासविद्ध हुआ, तो किसे क्रास से बेधा गया ?" उन लोगों ने कहा, "शरीर को।" ऋषि ने कहा, "वह एक मनुष्य था जिसके शरीर या बाहरी खोल को हानि पहुँचायी गयी थी या क्रास विद्ध किया गया था, किन्तु वह एक मनुष्य था जिसने निर्विकार आत्मा को, सच्चे गूदे को बाहरी खोल से अलग कर लिया था। बाहरी खोल टूट गया था किन्तु भीतरी हिस्सा अखंड था। इसलिए क्यों आप इस पर दुःख प्रगट करते हैं, इस पर क्यों रोते या बिलखते हैं ? दूसरे लोगों की स्थिति कच्चे नारियल की-सी है जिसमें गूदा खोपड़े से सटा रहता है और इसलिए जब शरीर या खोपड़े पर कोई विघ्न आता है तो भीतरी गूदा भी विस्थापित या आहत हो जाता है। और यही दोनो में भेद है।"

आपमें जो दुर्बलता या रोग है वह है छिलके से यह लगाव, छिलके से यह चिपके रहना या छिलके की यह गुलामी। सांसारिक लोगों की दृष्टि में यह छिलके के बन्धन से मुक्त होना, लगाव को छोड़ देना ही मृत्यु है। आपकी वर्त्तमान दृष्टि से वह मृत्यु है और जब तक आप इस मृत्यु का क्लेश भोग नहीं कर लेते और इस खोल से अपने को प्रथक नहीं कर लेते तब तक आप मृत्यु पर विजय नहीं पा सकते, आप उद्वेग, दुर्दशा, रोग या वेदना से ऊपर नहीं उठ सकते। शरीर को ऐसा हो जाने दीजिए मानों उसका अस्तित्व कभी न था। एक मुक्त व्यक्ति, स्वतंत्र व्यक्ति वही है जो

ईश्वर में, ईश्वरत्व में इस प्रकार बसता है मानों उसके शरीर का कभी जन्म ही न हुआ था।

राम ने ऐसा कथन बहुत बार सुना है कि "मेरी अभिलाषा है कि मेरा कभी जन्म न हुआ होता।" डीन स्विफ्ट (Dean Swift) जाब (Job) का यह वाक्य पढ़ा करता था, "उस दिन को ध्वंस हो जाने दो जिस दिन मैंने जन्म लिया था।" राम कहता है, "भाई, उस दिन को ध्वंस करने का यह उपाय नहीं है, जिस दिन आपका जन्म हुआ था। शरीर को, वासनाओं को नष्ट करो और ईश्वर-चेतना के उस स्तर पर निवास करो कि आपके लिए आपके जन्म का कोई दिन न रहे, मानों कोई न रहा हो, मानों शरीर का कभी जन्म ही नहीं हुआ था। जब आप प्रगाढ़ निद्रामग्न हों, उस समय जिस प्रकार जाग्रतावस्था की सारी अनुभूतियाँ लुप्त हो जाती हैं, वे विस्मृत हो जाती हैं, उसी प्रकार ईश्वर-चेतना के उस स्तर पर उन्नत हो जाइए कि आपके पुराने सम्बन्ध सब शून्यवत् हो जायँ। इस प्रकार आपको गूदे को खोपड़े से प्रथक करना है और तभी आप मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

आत्मोपलब्धि का अर्थ आपके पुराने गीतों को इस नये स्वर में मिलाना है। पुराने गीत वैसे ही बने रहेंगे किन्तु आपको उन गीतों को सम्पूर्ण रूप से नये स्वर में गाना होगा। आपको संसार की ओर एक बिल्कुल नये स्थिति-बिन्दु से देखना होगा। दो स्थिति-बिन्दुओं को आप एक साथ नहीं मिला सकते। यह नहीं हो सकता कि कुछ गोचर व्यापारों को आप सांसारिक स्थिति-बिन्दु से देखें और उन व्यापारों की परिस्थितियों को नये स्थिति-बिन्दुओं से देखें। आपका स्थिति-बिन्दु सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित होने दीजिए, हर वस्तु की ओर ईश्वर की तरह देखिए। संसार से

आपका सम्बन्ध वैसा ही होना चाहिए जैसा कि ईश्वर का संसार से है। पूर्ण परिवर्त्तन। इसका उदाहरण कुछ कहानियों के द्वारा दिया जायगा।

किसी समय एक व्यक्ति एक सभा में आया, जहाँ सब लोग ईश्वर-चेतना में मग्न थे। अन्दर आकर उसने रोना, चिल्लाना और छाती पीटना शुरू किया, किन्तु किसी ने उस पर ध्यान न दिया। वह व्यक्ति राम के पुत्र पर रो रहा था और यह लड़का उस व्यक्ति का सम्बन्धी था। अस्तु, जब किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया तो वह वहाँ बैठ गया। और तब चुपके से, शान्तिपूर्वक, स्पष्ट रूप से, उसकी चिन्ता दूर करने तथा उसे ढाढ़स देने के लिए उससे पूछा गया। उसने कहा मेरे इस सम्बन्धी राम के पुत्र की मृत्यु मेरे लिए असह्य है। उपस्थित मंडली में से किसी ने भी शोक प्रकट न किया और न कोई उद्वेग के लक्षण प्रगट किये क्योंकि वहाँ तो ईश्वर-चेतना की अवस्था थी, वहाँ तो वैसी ही अवस्था थी जहाँ संसार की हरएक वस्तु ईश्वर के स्थिति-विंदु से देखी जाती थी; वहाँ तो वह स्थिति थी जहाँ पुराने गीत का ईश्वरत्व के नये संगीत में विलयन हो गया था। जो शब्द या वाक्य उस समय मुँह से निकले वे निम्न लिखित थे, "अरे भाई! तुम सम्बन्धी हो, यह तथ्य वैसा ही है जैसे कोई आकर कहे, अजी महाशय, हवा चल रही है; किंतु भाई हवा चलती है तो क्या हुआ, इसमें अस्वाभाविक कौन-सी बात है जो हम विचलित हो जायँ। या, अजी महाशय, नदी बह रही है; तो नदी के बहने से हुआ क्या, यह तो स्वाभाविक है। इससे हम विचलित क्यों हों, नदी बहती है, यह स्वाभाविक है। इन कथनों में

कुछ भी अस्वाभाविकता या विलक्षणता नहीं है। इसी प्रकार जब आप आकर कहते हैं कि राम का पुत्र मर गया तो उसमें कोई असाधारणता नहीं है, वह तो नितान्त स्वाभाविक है, जिसने भी जन्म लिया है, मरने के लिए जन्म लिया है। जब आप किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश करते हैं तो अल्प समय वहाँ ठहरने के लिए ही वहाँ प्रवेश करते हैं या सदा के लिए उसे घर बनाने को? क्या आप परीक्षा देकर निकल नहीं आते या वहाँ जीवन भर नवागत विद्यार्थी की तरह पड़े रहते हैं? जब आप प्रथम कक्षा में जाकर भर्ती होते हैं तब आपका उद्देश्य यही रहता है कि एक दिन आप उस कक्षा को त्याग देंगे और उससे उच्चतर कक्षा में तरक्की पायेंगे, इत्यादि।

जब आप किसी सीढ़ी के पास पहुँचते हैं तो यह स्पष्ट ही है कि आप वहाँ पर सदा के लिए नहीं रहेंगे, कुछ समय के बाद सीढ़ी से उठ या उतर आयेंगे।

जब आपका पुनर्जन्म होता है तो क्या यह स्पष्ट नहीं रहता कि आपको यह जन्म भी त्याग देना होगा।

इसी प्रकार जब आप इस शरीर में प्रवेश करते हैं तब यह ज्ञात होना चाहिए कि आप इस शरीर का त्याग भी करेंगे। इसलिए यदि वह लड़का, जिसे आप राम का लड़का कहते हैं, मर गया है तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है, इसमें कुछ भी असाधारण या विलक्षण बात नहीं है। यह विचित्र बात नहीं है और इससे आपको विचलित नहीं होना चाहिए, यह तो ऐसा कहने के समान है कि आज आपने अपने नाखून कटवाये थे। यदि पुत्र मर गया है तो ठीक है, इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है।

अपने सांसारिक सम्बन्धों की ओर देखने की यही रीति है और

इस प्रकार से अपने को स्वतंत्र रखिए। वास्तवता के स्थितिविन्दु से, राम को सत्य-स्वरूप, ईश्वर और अपना निवास बनाकर अपने सब परिचितों, सम्बन्धियों तथा कुटुम्बों को उस श्रेष्ठ स्थान से देखिए। ठीक जिस प्रकार से लिक निरीक्षणकेन्द्र (Lick observatory) से लोग सांसारिक व्यापारों का अवलोकन करते हैं, उसी प्रकार से आत्मा के लिक निरीक्षणकेन्द्र से दिव्यज्ञान के दूरदर्शक यंत्र द्वारा इस संसार को देखिए और आप देखेंगे कि ईश्वर, देवों के देव, प्रकाशों के प्रकाश, परम सत्य आप ही हैं। वही मैं हूँ। यह शरीर नहीं, यह मन नहीं, यह तुच्छ, मिथ्या अभिलाषी मन भी नहीं; मैं तो दिव्य ईश्वर हूँ। ऐसा अनुभव कीजिए, अरे ऐसा बोध कीजिए। इसकी उपलब्धि करें! ऐसा अनुभव करें कि आप ईश्वर हैं। यही एक आवश्यक बात है। इसकी राम को क्या चिन्ता है, या आपको क्या चिन्ता है या किसी को भी क्या चिंता है कि यह शरीर एक गन्दी-सी झोपड़ी में है। इस ईश्वर-चेतना को बनाये रखिए, और जहाँ पर भी आप हों वही स्थान स्वर्ग में परिवर्त्तित हो जायगा। यदि आपके इस शरीर को क्लेश दिया जाता है, आपको उसकी क्या परवाह है? ईश्वर-चेतना को अपने साथ रखिए और सारे संसार की निधियाँ आपकी हैं, विश्व की सारी निधियाँ आपकी हैं। सिर्फ इस (ईश्वर-चेतना) को रख लें और बाकी सब कुछ फेंक दें।

एक बार एक व्यक्ति राम से आकर बोला, "ऐ महाशय, एक बड़ा राजा आपको श्रद्धा समर्पण करने आ रहा है।" अब यहाँ पर एक महत्व-पूर्ण बात है। राम एक ऐसे शोचनीय अवसर के सम्बन्ध में कहने जा रहा है, जहाँ लोग प्रायः अपने मित्रों से

प्रशंसात्मक तथा चाटुकारी उक्तियों को सुनकर प्रसन्न हुए बिना नहीं रहते। अच्छा तो उस व्यक्ति ने कहा, "यह एक बहुत ही धनी व्यक्ति है जो कि आपसे मिलने आ रहा है।" वहाँ राम प्रत्येक वस्तु को ईश्वर के स्थिति-बिन्दु से देख रहा था और ये शब्द राम के मुह से निकले, "राम से उसका क्या काम ?" उस व्यक्ति ने कहा, "अरे महाशय, वह ऐसी सुन्दर शानदार मूल्यवान वस्तुएँ आपके लिए खरीद कर ला रहा है।" राम ने कहा, "मुझे इससे क्या ? एक राजा मेरे लिए क्या चीज है ? मुझे केवल वास्तवता रखने दो। तुच्छ बातें और लघुवृत्तियाँ; इन अवास्तव व्यापारों में मुझे बिल्कुल रुचि नहीं है। मेरा सत्य, मेरा ईश्वरत्व, मेरा आनन्द, मेरा आत्मा, मुझे प्रवृत्त रखने को पर्याप्त है। इन व्यर्थ की बातों, इन लघु वृत्तियों तथा सांसारिक वस्तुओं से मेरा कोई सरोकार नहीं है। यह राजा या ये धनी लोग राम के शरीर के पास आते हैं और यदि राम इन शरीरों में रुचि लेने लगा तो वह वास्तव में शंका का स्थल बन जायगा। किन्तु जब दृष्टिकोण बदल गया है, जब पुराने गीत नई लय में बाँधे गये हैं, जब उच्चतम स्थिति-बिन्दु से अवलोकन किया जाता है तो फिर कोई राजा या नगर-पिता या सम्राट मुझमें कौन-सी रुचि उद्दीप्त कर सकता है ? कोई भी नहीं।" इसलिए स्थिति-बिन्दु को बदलिए। जब समाचार-पत्रों में आपके लिए कोई आकर्षण नहीं रह जायगा, जब उनमें आपकी रुचि का अन्त हो जायगा, उस दिन आप इस शरीर से ऊपर उठ जायेंगे और अपने देहाभिमान को नष्टकर आप ईश्वर से निकटतर हो जायेंगे। इस सत्य को अपने व्यवहार में प्रयुक्त करने का यह एक उपाय आपको मिला है। जब क्रासविद्ध ईसा के समान आप इस शरीर के सुख-दुख

से ऊपर उठ जायँगे, तब आप में भी, सत्य उसी भाँति प्रदीप्त हो उठेगा।

ये कहानियाँ इसलिए नहीं कही गई हैं कि आप इनकी नकल मात्र करें। नहीं, नहीं। अपने में दिव्य ज्योति का बोध कीजिए ईश्वर की अनुभूति कीजिए जो कि आप स्वयं हैं; उसकी अनुभूति कीजिए और भय और उद्वेग तथा सारे प्रलोभनों से ऊपर उठिए।

ओं! ओं! ओं!



बंकिम-साहित्य—आनंदमठ २) विषवृक्ष २) चन्द्रशेखर २) कपालकुण्डला २) कृष्णकांत का वसीयतनामा २) देवी चौधरानी २) बंगशार्दूल सीताराम २) राधारानी ॥) दुर्गेशनन्दिनी २) मृणालिनी २) इन्दिरा २) राजसिंह २॥) रजनी २) युगलांगुरीय ॥) लोकरहस्य २) कमलाकान्त का पोथा २) राजमोहन की स्त्री २)

टाम काका की कुटिया—(सचित्र) (छात्र संस्करण) १॥)

सम्राट नीरो—रोमांचकारी ऐतिहासिक उपन्यास ४॥)

हमारा समाज—एकांकी ॥) **हरिश्चन्द्र**—पद्याख्यान सटीक १)

बाल-साहित्य—चण्टचौकड़ी ।–) महाराज कपालफोड़ ।–) मायावी सपेरा ।–) डायन राजरानी ।–)

भारतीय कृषि-विज्ञान (सम्पूर्ण, चार खण्ड) ७॥)

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा ३)

हमारा भोजन—उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत १॥)

कला-उद्योग—लोहारी शिक्षक १।), मिट्टी का शिल्प १॥) कागज के हुनर १॥), बाँस-बेत-पत्तों का काम १।)

सा-रे-ग-म—हाई स्कूल तथा इण्टरमीजिएट के पाठ्यक्रम के अनुसार संगीत-शास्त्र की अनूठी पुस्तक। लेखक—श्री राधावल्लभ-नन्दराम चतुर्वेदी .... २॥)

कत्थक नटवरी नृत्य—नृत्य-शास्त्र .... ३॥)

महिलाचरित्र—गार्गी ॥=) राज्यश्री ॥=) गढ़मंडलकीरानी ॥=)

कुरान शरीफ हिन्दी ८), **कुरान का पारा अम्म**—मूल अरबी हिन्दी लिपि में ।=), कुरान पर एक दृष्टि ।–)

जीवन-चरित्र—हजरत अबूबकर ।=) हजरत उमर ।=) हजरत उस्मान ।=) हजरत अली ।=)

पता—श्री प्रभाकर-साहित्यालोक, २३ श्रीराम रोड, लखनऊ

گلاسوں میں جو ڈوبے
پھر نہ اُبھرے زندگانی میں

श्री प्रभाकर साहित्यालोक,

२३, श्रीराम रोड, लखनऊ

केवल कवर गुप्ता प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ में मुद्रित